ख़लील जिब्रान



मसीहा



ख़लील जिब्रान की पुस्तक
'The Prophet' का हिंदी अनुवाद

मसीहा

ख़लील जिब्रान की पुस्तक
'The Prophet' का हिन्दी अनुवाद

ख़लील जिब्रान

राजपाल

अनुवाद
सत्यकाम विद्यालंकार

ISBN : 9788170287643
संस्करण : 2016 © राजपाल एण्ड सन्ज़
हिन्दी अनुवाद © राजपाल एण्ड सन्ज़
MASIHA by Kahlil Gibran
(Hindi edition of *The Prophet*)

राजपाल एण्ड सन्ज़
1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट-दिल्ली-110006
फोनः 011-23869812, 23865483, फैक्स: 011-23867791
e-mail : sales@rajpalpublishing.com
www.rajpalpublishing.com
www.facebook.com/rajpalandsons

क्रम

मसीहा

प्रेम

विवाह

भोजन और भोज्य

श्रम का ध्येय

सुख-दु:ख का स्वरूप

घर क्या है?

वस्त्र-परिधान

क्रय-विक्रय

अपराध और दण्ड

विधि-विधान

स्वतन्त्रता और बन्धन

तर्क और आवेश

कष्ट और आनन्द

आत्मज्ञान

शिक्षक

मित्र कौन?

वार्तालाप

समय-विभाजन

अच्छाई और बुराई

प्रार्थना

आनन्द क्या है?

सुंदरता

भक्ति और कर्म

[मृत्यु](#)

[निवार्ण](#)

मसीहा

अपने देश से बिछुड़ने के बाद अलमुस्तफा ने आर्फलीज नगर में अपने जीवन के बारह सुनहरे वसन्त बिता दिए थे।

बारह वर्ष बाद भी उसके दिल में अपने देश की याद और आंखों में देश की ओर वापस जाने वाले जहाज़ की व्याकुल प्रतीक्षा बसी हुई थी।

आखिर बारह साल बाद एक दिन...

इलूल(असौज)महीने की सातवीं तारीख को उसने नगर के परवर्ती पर्वत के शिखर पर चढ़कर देखा, एक जहाज़ समुद्र पर छाए गहरे कुहासे को चीरता उसी ओर बढ़ रहा था।

उस घड़ी अलमुस्तफा के हृदय–कपाट स्वयं खुल गए। मन का उल्लास क्षितिज तक फैले सागर की तरंगों से खेलने लगा, आह्लाद-प्लावित पलकें मन के मौन मन्दिर में प्रभु–चरणों पर झुक गई।

लेकिन पर्वत शिखर से उतरते समय कदम भारी हो गए, मन पर उदासी छा गई।

उसने सोचा :

क्या मैं वियोग की पीड़ा से शून्य ही यहां से विदा हो सकूंगा?

इस नगर में मेरे दिन दु:खों से दुर्वह और रातें एकान्त पीड़ा से अनुतप्त बीती हैं। लेकिन इस अनुताप और एकान्त को छोड़ते हुए मन विह्वल हो रहा है।

इस नगर की वीथियों में मैंने मन के मोती बिखेरे हैं और इन पर्वतों के अंचल में मेरी स्वप्निल आशा–अभिलाषाएं सांस ले रही हैं! विरह–वेदना का अनुभव किए बिना मैं कैसे उनसे विदाई ले सकता हूं!

उन्हें तन के जीर्ण वस्त्र की तरह उतारकर मैं कैसे उनकी याद अलग कर सकता हूं। उनसे बिछड़ते हुए मुझे अनुभव होता है, मानो मैं अपनी देह की त्वचा को देह से अलग कर रहा हूं।

किन्तु अब मैं यहां और ठहर भी नहीं सकता।

अतल समुद्र का आह्वान सबको बुला लेता है; मुझे भी बुला रहा है; मुझे भी जाना ही होगा।

अब यहां जड़वत् स्थिर रहने का अर्थ होगा, बर्फ में स्फटिक बनकर निर्जीव सांचों में ढल जाना। यह कैसे होगा, जब कि समय के पंख रात की ज्वालाओं में जल रहे हैं।

मैं चाहता हूं, आर्फलीज की हर चीज समेट कर ले जाऊं।

मगर कैसे?
अधर और जिह्वा से पंख पाकर भी वाणी उन्हें अपने साथ नहीं ले जा सकती।
हंस को भी, जब वह मानसरोवर की ओर उड़ता है, अपना नीड़ छोड़ना पड़ता है।

पहाड़ की तलहटी पर आकर अलमुस्तफा फिर समुद्र की ओर मुड़ा और उसने देखा कि उसके देश का जहाज़ देश के मल्लाहों के साथ तट की ओर बढ़ रहा था।
उसकी आत्मा पुकार उठी, जननी–जन्मभूमि के पुत्रो! सागर–तरंगों पर खेलने वालो! सहस्रों बार तुमसे सपनों में मिला हूं किन्तु आज जागृति में, जो स्वप्न से भी गहन है, पहली बार साक्षात् हो रहा है।
मैं अपनी बेचैनी के पंखों को पाल बनाकर साथ चलने को तैयार हूं।
अब इस शान्त, सहमी–सी हवा में मुझे कुछ ही सांस और लेने हैं, और शायद अन्तिम बार अपनी ममताभरी आंखों से इस धरती का स्पर्श करना है।
उसके बाद मैं भी तुम्हारे साथ के समुद्र–प्रवासियों में से एक प्रवासी बनूंगा।
जो अनन्त परिधि सागर! ओ निद्राविलीन माता! तू ही मुक्त भाव से अविराम बहती जलधाराओं का अन्तिम विराम है।
अब इस धारा का एक ही मोड़ शेष है।
उसके बाद मैं तेरे संग चलूंगा; जैसे एक अनन्त बूंद अनंत सागर के संग।

उसने देखा कि नगर के नर–नारी अपने अधजुते खेतों से नगर–द्वार की ओर दल–के–दल बढ़े आ रहे थे। उनके अधीर होंठों पर उसका ही नाम था।
अलमुस्तफा अपने से कह उठा :
क्या वियोग का यह दिन ही मिलन का दिन होगा?
जिन्होंने अनुमय–विनय की कि वह (अलमुस्तफा) उनसे विदा न हो। अलमुस्तफा मौन था। उसका मस्तक झुक गया था, उसके वक्ष पर अश्रुधारा प्रवाहित थी।
यह बात केवल पड़ोस में खड़े लोगों ने देखी।

तदुपरान्त सब लोग मंदिर–प्रांगण की ओर चल पड़े।
वहां एक देवालय से अलमित्रा नाम की देवी बाहर आई, जो साधिका थी।
अलमुस्तफा ने उसकी ओर अत्यधिक स्निग्ध–कोमल भाव से आंख उठाई। यह वही थी, जिसने अलमुस्तफा को प्रवास के प्रथम दिन अपना विश्वास देकर आत्मीय बनाया था।
देवी ने अलमुस्तफा का इन शब्दों में स्वागत किया :
ओ परम तत्व के शाश्वत शोधक! ईश्वर के दूत! तुमने अपने देश की ओर जाने वाले जहाज़ के लम्बे मार्ग की अनन्त प्रतीक्षा की है।
आज वह जहाज़ आ गया है–तुम्हें अब जाना ही होगा। मैं जानती हूं, बीते दिन की स्मृतियों और भविष्य के स्वप्नों की गहरी उत्सुकता तुम्हारे प्राणों को अधीर कर रही है।
हमारे प्रेमपाश तुम्हें नहीं बांधेंगे। स्वार्थ तुम्हारे पैरों की ज़ंजीर नहीं बनेगा।
लेकिन हमारी यह प्रार्थना है कि विदा होने से पहले हमें अपना ‘सत्य’ दे जाओ।
हम उस ‘सत्य’ को अपनी सन्तानों को देंगे, वे अपनी सन्तानों को, और इस प्रकार

वह अमर रहेगा।

तुमने हमारी चिन्ताओं में साथ दिया है और जागते हुए तुमने हमारी नींद के हँसने–रोने की भी सुना है।

इसलिए अब हमें ही हमारे आगे अनावृत्त करो और जन्म व मृत्यु के मध्य के जो गहन रहस्य तुमने देखे हैं, उन्हें प्रकट करो।

अलमुस्तफा ने कहा : आर्फलीज–निवासियो! मैं तुमसे वही कह सकता हूं जो तुम्हारी अन्तरात्मा कहती रही है; उसके सिवाय मैं भी तुमसे क्या कह सकता हूं!

तुम प्रश्न करो, मैं अपने शब्दों में तुम्हारे ही अन्तर में निहित सत्य को प्रकट करने का यत्न करूंगा।

तब नगर–निवासियों ने एक–एक अपने मन में छिपे प्रश्नों को प्रकट किया।

प्रेम

तब अल मित्र ने कहा–हमें प्रेम के बारे में बताओ।

उसने अपना सिर उठाया और लोगों पर नज़र डाली, तो वे शांत हो गए। उसने कहना शुरू किया :

प्रेम जब तुम्हें बुलाए, उसके पीछे चलने लगो। हालांकि उसके तौर–तरीके सख्त होते हैं, और फिसलन से भरे भी हैं। जब उसके पंख तुम्हें घेरने लगें, उनमें घुस जाओ। उसके भीतर छिपी तलवार तुम्हें घायल कर सकती है। जब वह कुछ कहे, उसका विश्वास कर लो। हालांकि उसके शब्द तुम्हारे सपनों को चूर–चूर कर सकते हैं, जैसे उत्तर की हवा बग़ीचे को नष्ट कर देती है।

प्रेम तुम्हें ताज भी पहना सकता है, और सूली पर भी चढ़ा सकता है। वह तुम्हारा विकास कर सकता है और तुम्हारी छंटाई भी कर सकता है।

वह तुम्हारी ऊँचाइयों तक चढ़कर सूरज की रोशनी में लहराती तुम्हारी कोमलतम शाखाओं को दुलरा सकता है।

तो वह तुम्हारी जड़ों में नीचे उतरकर ज़मीन में गड़ी उनकी मज़बूती को भी झकझोर सकता है।

मकई की बालियों की तरह वह तुम्हें अपने में समेटकर रखता है।

वह तुम्हें नंगा करने के लिए उन सबको तोड़ भी देता है।

छिलकों से मुक्त करने के लिए वह तुम्हारी सफाई भी कर देता है।

फिर वह तुम्हें पीसकर सफेद आटे में बदल देता है।

अब वह तुम्हें तब तक गूँधता है, जब तक तुम बिलकुल मुलायम न बन जाओ।

इसके बाद वह तुम्हें पवित्र अग्नि में सेंक कर पवित्र रोटी में बदल देता है, जिससे तुम परमपिता का पवित्र आहार बन सको।

ये सब बातें तुम्हारे साथ प्रेम इसलिए करेगा जिससे तुम अपने हृदय के रहस्य जान सको, और वह ज्ञान पाकर जीवन के हृदय का अंग बन सको।

लेकिन अगर तुम डर के कारण केवल प्रेम की शांति और सुख ही प्राप्त करना चाहो, तो अच्छा होगा कि अपनी नग्नता को ढंककर तुम प्रेम की चक्की के नीचे से चुप होकर निकल जाओ, और मौसम की उस सपाट दुनिया में पहुँच जाओ, जहाँ तुम हँस तो सकोगे लेकिन पूरी तरह नहीं, और रो भी सकोगे पर खुलकर नहीं रो सकोगे।

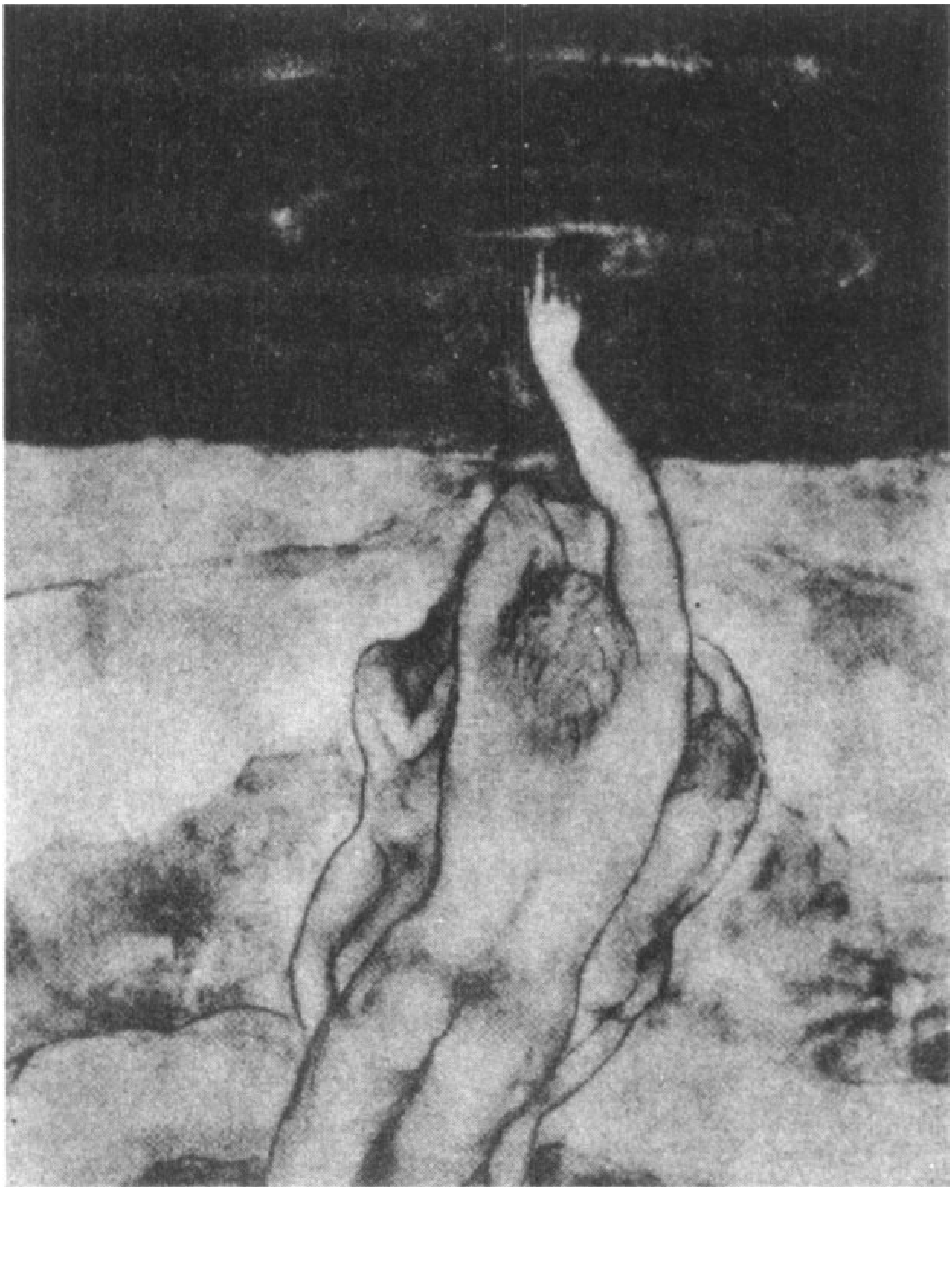
प्रेम अपने अलावा और कुछ नहीं देता, और अपने को ही लेता है, और कुछ नहीं लेता।

प्रेम अधिकार नहीं करता, न किसी को करने देता है। क्योंकि प्रेम अपने में संपूर्ण है।

तुम, जब प्रेम करो तो यह मत कहो, 'ईश्वर मेरे हृदय में हैं। यह कहो कि 'मैं ईश्वर के हृदय में हूँ।'

यह भी मत सोचो कि तुम प्रेम का पथ निर्धारित करोगे

क्योंकि प्रेम, यदि तुम्हें योग्य मानेगा, तो स्वयं तुम्हारा मार्ग निधारित करेगा।



प्रेम की इच्छा एक ही होती है, स्वयं को प्राप्त करना। लेकिन यदि तुम प्रेम करो और इच्छाएँ भी करना चाहो, तो तुम ये इच्छाएँ करो :

कि तुम पिघल सको और ऐसे झरने की तरह बह सको जो रात को अपना गीत गाता है,

कि तुम अतिशय कोमल होने का दर्द जान सको, कि तुम प्रेम की अपनी समझ की चोट का अनुभव कर सको;

और प्रसन्न होकर उसके कारण निकलने वाला रक्त बहता देख सको।

कि पंखों पर उड़ता हृदय लेकर सवेरे जाग सको और एक और प्रेमपूर्ण दिन बिताने के लिए धन्यवाद दे सको;

कि दोपहर के वक्त आराम करते हुए प्रेम के चरम आनंद पर ध्यान लगा सको,

कि शाम को कृतज्ञ भाव से घर वापस आ सको, और फिर अपनी प्रिया के लिए हृदय में प्रार्थना और ओठों पर प्रशंसा का गीत लिए सोने जा सको।

विवाह

अल मित्र ने फिर बोलना शुरू किया, और सवाल किया, "और विवाह क्या है, स्वामी?"

उसने उत्तर में कहना शुरू किया :

तुम एकसाथ पैदा हुए, और एकसाथ ही सदा रहोगे।

तुम तब भी एकसाथ ही रहोगे जब मृत्यु के सफेद डैने तुम्हारे समय को तितर–बितर कर देंगे।

हाँ, ईश्वर की शांत स्मृति में भी तुम एकसाथ ही रहोगे।

लेकिन तुम्हारे इस साथ के बीच–बीच में खुली जगहें भी अवश्य होंगी।

और स्वर्ग के पवन तुम्हारे बीच नृत्य करेंगे।

प्रेम करो एक दूसरे से, लेकिन उससे उसे बाँधना नहीं,

उसे अपनी आत्माओं के दो किनारों के बीच समुद्र की तरह बहने दो।

एक–दूसरे का प्याला भर दो, लेकिन दोनों एक ही प्याले से पीना नहीं।

एक–दूसरे को अपनी रोटी तो देना लेकिन एक ही रोटी को खाना नहीं।

एकसाथ गाना और नाचना, और खुशियाँ भी मनाना लेकिन दूसरे को अकेले भी रहने देना।

जैसे सितार के सभी तार अलग–अलग होते हैं, फिर भी एक ही राग में बजते हैं।

अपना हृदय दूसरे को दो लेकिन गिरवी की तरह नहीं, कारण, जीवन का हाथ ही हृदय को नियंत्रित करता है। एक–दूसरे के साथ खड़े होओ, लेकिन सटकर नहीं, कारण, मंदिर के खंभे अलग–अलग हो खड़े होते हैं।

और सरो और बलूत के पेड़ एकसाथ रहकर पनपते नहीं।

भोजन और भोज्य

तब एक सराय के बूढ़े मालिक ने प्रश्न किया : भोजन और भोज्य का क्या सम्बन्ध है?

अलमुस्तफा ने उत्तर दिया :

अच्छा होता कि हम पृथ्वी के गन्ध–सेवन से ही जीवित रह सकते और फूल–पत्तों को जीवन देने वाली प्रकाश–किरणें ही हमें जीवनरस से सींचने में पर्याप्त होतीं।

परन्तु यदि तुम्हारी क्षुधा जीव–हिंसा के बिना शान्त नहीं होती और नवजात वत्स को उसकी माता के स्तन से छुड़ाकर ही तुम्हारी तृष्णा शान्त हो सकती है, तो यह काम भी परम देवता के चरणों में अर्घ्य अर्पण करने की भावना से ही करना चाहिए।

यही समझना कि वन–उपवन के इन निष्पाप जीवों की बलि उनसे अधिक शुद्ध मानव–आत्मा की परितुष्टि के लिए विश्वनियंता की मौन आज्ञा से दी जा रही है। उनका वध करते हुए उनके प्रति स्वगत ही यह कहना :

— जो शक्ति तुम्हारा वध कर रही है, उसके लिए मेरी भी बलि दी जाएगी।

— क्योंकि जिस कानून ने तुम्हें मुझ वधिक के हाथ में दिया है, वही मुझे भी मुझसे अधिक बली वधिक के हाथ में दे देगा।

— तुम्हारा रक्त और मेरा रक्त दोनों का एक ही हेतु है–एक ही विश्व–वृक्ष का पोषण करना।

जब तुम किसी सेब को अपने जबड़ों में कुचलो तो दिल–हो–दिल उससे कहो :

— तुम्हारे बीज मेरी देह में जीवित रहेंगे।

— मेरे हृदय में उनकी कलियां खिलेंगी।

— उनकी गन्ध मेरी सास बनेगी।

— और हम साथ–साथ सब मौसमों की बहार लूटेंगे।

भट्ठी में आसव के लिए जब तुम द्राक्षोद्यान से द्राक्षा बटोरो, तो मन–ही–मन उससे यह कहना न भूलना :

मेरी देह भी द्राक्षोद्यान है और मेरे अंग–प्रत्यंग भी द्राक्षा–भट्ठी में रिसने के लिए बटोरे जाएंगे।

— नवीन द्राक्षा–मधु के समान मुझे भी चिर काल तक बन्द बोतलों में भरे रहना पड़ेगा।

और सर्दी में जब द्राक्षा–मधु निकालो तो उसके हर प्याले के लिए तुम्हारे मन से एक गीत निकले। वह गीत तुम्हें वसन्त के दिनों, अंगूरी बेलों और द्राक्षा–भट्ठी की याद अवश्य दिलाए–यह ध्यान रखना।

श्रम का ध्येय

तब एक किसान ने पूछा : श्रम का ध्येय क्या है?

अलमुस्तफा ने उत्तर दिया :

तुम श्रम इसलिए करते हो कि धरती और आकाश, जगत् और जगदात्मा की गति के साथ गतिमान रह सको।

श्रम के बिना तुम गतिशील चर–अचर से बिछुड़ जाओगे और जीवन की उस यात्रा से पिछड़ जाओगे जो राजसी आन–बान और गर्वीले दान की भावना लिए अनन्त की राह पर चल रही है।

यह श्रम तुम्हें उस वंशी का रूप दे देता है जिसके अन्तरंग में भरे गए श्वास–निःश्वास संगीतमय बन जाते हैं।

तुममें कौन ऐसा होगा जो मूक, मूढ़ रहेगा, जबकि विश्व प्रांगण में अन्य सब स्वरों का मेला लगा होगा।

तुम्हें सदा यही कहा गया है कि श्रम एक शाप है और दुर्भाग्य है।

मैं कहता हूं: श्रम करके तुम पृथ्वी माता का चिरंतन स्वप्न पूरा करते हो, जिसकी पूर्ति का भार उस स्वप्न के जन्म लेते ही तुम्हें सौंपा गया था।

श्रम में मन लगाना ही जीवन से प्रेम करना है।

और श्रम द्वारा जीवन से प्रेम करना जीवन के गूढ़तम रहस्यों से अन्तरंग निकटता पाना है।

कष्टों से घबराकर यदि तुम पैदा होने को ही दुर्भाग्य और देह को अपने ललाट पर लिखा अभिशाप मानते हो, तो भी सुनो :

केवल तुम्हारे माथे का पसीना ही उस दुर्भाग्य–रेखा को मिटा सकेगा।

तुम्हें यह भी बतलाया गया है कि जीवन अन्धकारमय है; थकान की घड़ियों में तुम भी थके–हारे लोगों की यह बात दुहराने लगते हो।

मैं तो कहता हूं, जीवन सचमुच अन्धकारमय है यदि उसमें प्रवृत्ति, प्रेरणा न हो।

प्रवृत्ति ज्ञान के प्रकाश के बिना अंधी ही रहती है।

और सब ज्ञान मिथ्या है, यदि वह कर्मरहित हो।

प्रेम प्रेरित कर्म करके ही तुम अपने को अपने से, एक–दूसरे से और भगवान् से युक्त करते हो।

जानते हो, प्रेमयुक्त कार्य का क्या स्वरूप है?

यह होता है, हृदय के कते सूत से वह वस्त्र बुनना, जो तुम्हारे प्रियतम को पहनना है।

यह अपने मनचाहे मीत के लिए अपने हाथों घर बनाना है।

यह है स्नेह से अपने हाथों बीज बोना और फसल काटना, जिसे तुम्हारे प्रेमी को खाना हो।

यह है अपने सब कर्मकलाप को अपनी आत्मा के श्वासों से चेतन बनाना।

और यह आस्था रखना कि तुम्हारे चारों ओर खड़े जड़ जीव तुम्हें ध्यान से देख रहे हैं।

प्राय: मैंने तुम्हें यह कहते सुना है–जैसे नींद में बोल रहे हो–संगमरमर के श्वेत पत्थर में अपनी कल्पना को साकार करने वाला शिल्पी उस खेत के किसान से श्रेष्ठ है, जो केवल मिट्टी के खेत में अनाज बोता है।

और मनुष्याकृति में आकाश के इन्द्रधनुष को उतारने वाला चित्रकार पैरों के जूते बनाने वाले चमार से कहीं श्रेष्ठ है।

परन्तु मैं स्वप्न में नहीं, बल्कि पूरे जागरण में यह कहता हूं कि हवा आकाश में ऊंचे वटवृक्ष तथा पृथ्वी पर बिछी घास, दोनों से एक समान व्यवहार करती है।

महान् तो वही है, जो अपने प्रेम से हवा के हाहाकार को मधुर संगीत में बदल दे।

श्रम है प्रेम को ही आकार देना।

यदि तुम प्रेम से श्रम नहीं करते, केवल लाचारी से करते हो–तो अच्छा है कि तुम वह काम छोड़कर मन्दिर की चौखट पर जा बैठो और प्रेमपूर्वक काम करने वालों से भीख मांगकर उदरपूर्ति करो।

क्योंकि यदि तुम बेमन से रोटी पकाते हो, तो कड़वी पकेगी; जो आधे आदमी की भूख भी नहीं मिटा सकेगी।

यदि तुम अनिच्छा से अंगूरों का रस निकालते हो, तो तुम्हारी उदासी उसमें विष घोल देगी।

चाहे तुम गन्धर्वो–सा गान करो, यदि उसमें प्रेम न होगा तो तुम केवल दिन और रात के कलरव से मनुष्य के कान भरोगे।

सुख–दुःख का स्वरूप

फिर एक महिला ने प्रश्न किया, सुख–दुःख के क्या स्वरूप हैं?

अलमुस्तफा ने कहा :

सुख–दुःख का ही नग्न रूप है।

तुम्हारे अन्तर का वही सरोवर, जिसमें हास्य की हिलोर उठती रही है, प्राय: तुम्हारे ही आसुओं से भरता रहा है।

इसके अतिरिक्त और हो भी क्या सकता है?

दु:ख तुम्हारी आत्मा में जितनी गहरी रेखाएं खीचेंगा उसमें, उतना ही अधिक सुख भर सकोगे।

आज जिस प्याले में तुमने द्राक्षा–मधु भरा है, यह वही तो है जो कल कुम्हार की दहकती भट्टी में तप चुका है।

और आज जो बंसी तुम्हारी व्याकुल आत्मा को लोरियां दे रही है, वह क्या वही बांस का टुकड़ा नहीं है, जिसे कल बढ़ई ने पैने नश्तर से काटा था?

सुख के क्षणों में हृदय की गहराई में झांको और देखो कि आज सुख का वही कारण है जो कल दु:ख था।

दु:ख के क्षणों में फिर दिल की गहराई में झांकोगे तो अनुभव करोगे कि आज तुम उसी वस्तु पर रो रहे हो जिस पर कल हँस रहे थे।

कुछ लोग कह उठते हैं–सुख दु:ख से श्रेष्ठ है।

दूसरे कहते हैं–नहीं दु:ख सुख से श्रेष्ठ है।

मैं कहता हूं–दोनों साथी हैं, अभिन्न हैं।

दोनों साथ–साथ पैदा होते हैं। एक जब तुम्हारे पास बैठकर जागता है, तो दूसरा तुम्हारी शय्या पर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा होता है।

सत्य तो यह है कि सु:ख–दु:ख के बीच तुम तराजू के पलड़ों की तरह तुले रहते हो।

जब तुम रिक्त रहते हो, तभी सन्तुलित और संस्थित रहते हो।

इसमें तभी उतार–चढ़ाव आना चाहिए जब जगत् का स्वामी स्वयं अपना स्वर्ण, अपनी चांदी तोलने को तुम्हें हाथ में दे।

घर क्या है?

प्रश्न किया एक शिल्पी ने, घर क्या है?

अलमस्तुफा ने कहा :

नगर में घर बनाने से पहले वन के एकांत में अपने मन की पर्णकुटी बनाओ।

जैसे तुम्हारे अंतर में सांझ की वेला में घर लौटने वाला मन रहता है, वैसे ही घर से दूर और एकाकी घूमने वाला मन भी रहता है।

तुम्हारा घर तुम्हारी विराट् काया है।

दिन में वह रवि–किरणों के संग जागती और रात की नीरवता में सोती है; सपनों से भी वह रिक्त नहीं। तुम्हारा घर भी तो स्वप्न लेता है, और स्वप्न में नगर से बाहर निकलकर वन–वीथियों और गिरि–शिखरों पर विहार करता है।

मन करता है कि मैं तुम्हारे घरों को अपनी मुट्ठी में समेटकर जंगलों और पर्वतों की तलहटियों में बिखेर दूं जैसे हवा तिनके को बिखेर देती है।

कितना अच्छा होता, जो पर्वत–घाटियां तुम्हारा घर होतीं और हरी पगडण्डियां तुम्हारी गलियां। द्राक्षा के सघन वन–कुजों में तुम एक–दूसरे से भेंट करते और पृथ्वी की गंध से महकते कपड़े पहनकर अपने घरों को लौटते।

दु:ख है! अभी ऐसा नहीं हो सकता।

जाने किसकी दुर्लक्ष आशंका से तुम्हारे पूर्वजों ने तुम्हें इतनी घनी बस्तियों में बसा दिया। वह आशंका कुछ काल और तुम्हारे रक्त में बसी रहेगी। कुछ काल और नगर की सीमान्तवर्ती प्राचीर तुम्हारे ग्राम–गृहों को तुम्हारे खेतों से विभाजित करके रखेगी।

आर्फलीज–निवासियो! इन घरों की दुर्भेद्य दीवारों में तुमने कौन–सी निधि सुरक्षित रखी है और इन लौह द्वारों के अन्दर कौन–सी मुक्ता–मणियों का खजाना छिपा है जिस पर तुम आठ प्रहर प्रहरी बने बैठे हो?

क्या तुम प्रशान्त हो? क्या तुम्हें वह मन:प्रसाद प्राप्त है जो मानव की अंत:शक्तियों को प्रकाश और प्रेरणा देता है?

क्या तुम्हारे हृदय में अतीत के वे संस्कार जीवित हैं जो आत्मा के शिखर–श्रृंगों को समन्वित करते हैं?

क्या तुम्हारे पास सौष्ठव है? वह सौष्ठव जो हृदय को काष्ठ और पाषाण–निर्मित निवास–स्थलों से दूर पवित्र गिरी–शिखरों की ओर आकर्षित करता है।

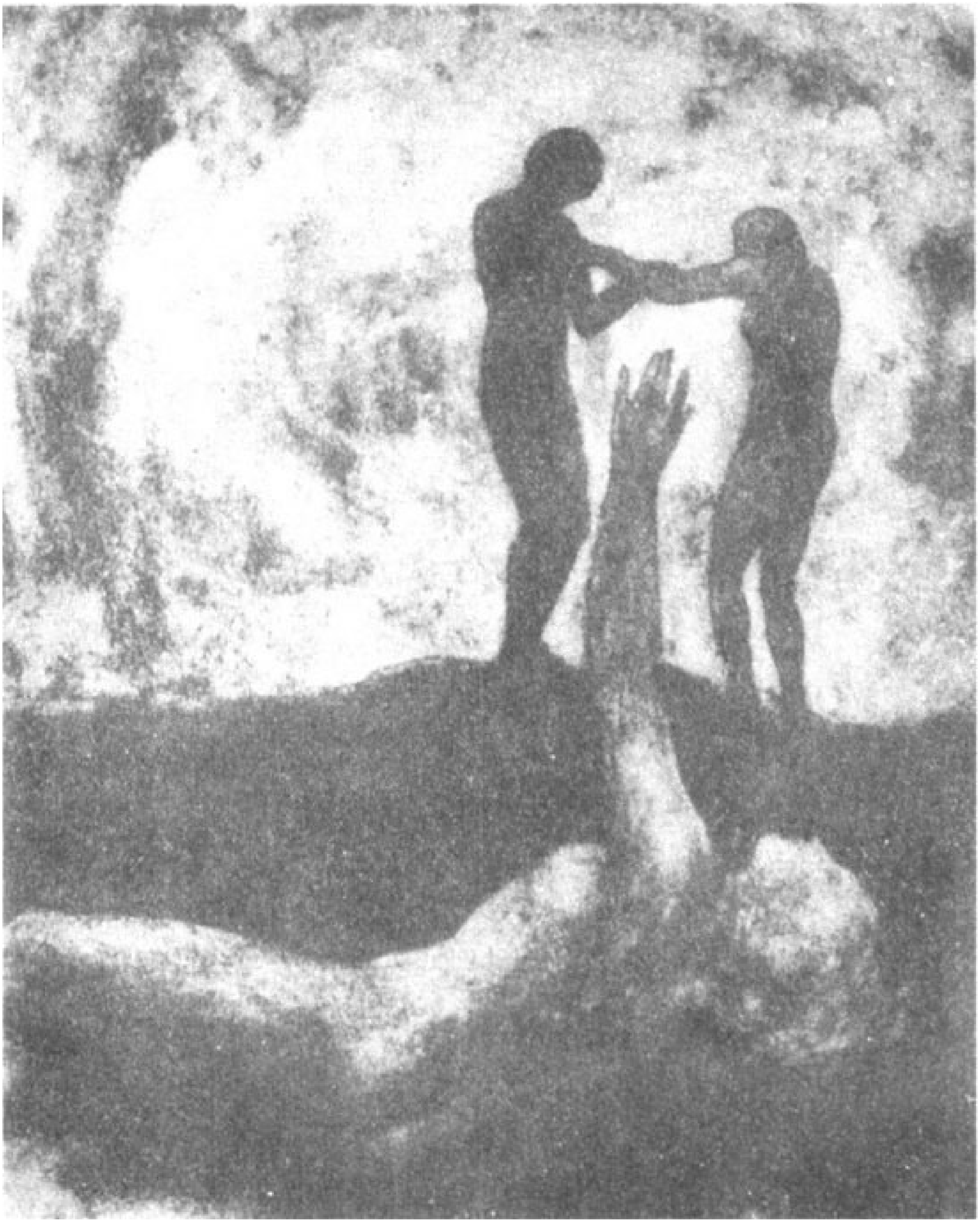
कहो, क्या इन विभूतियों से तुम्हारे घर–गांव विभूषित हैं?

अथवा वहां केवल विलास और विलास की अमिट भूख ही है, जो अनचाहे अतिथि

की भांति प्रवेश करके पहले आतिथेय और अन्त में घर पर पूर्ण अधिकार कर बैठती है?

यही नहीं, फिर वह ऐसी जादूगरनी भी बन जाती है जो सदा तुम्हारी कामनाओं को अपने इशारे पर नचाती है।

यद्यपि इस जादूगरनी के हाथ रेशम के हैं लेकिन दिल फौलाद का है।



यह तुम्हें गहरी मीठी नींद में सुला देती है केवल इसलिए कि शय्या के पास खड़ी होकर वह तुम्हारी शारीरिक विलास–लीला पर हँस सके।

वह तुम्हारी विवेक–बुद्धि का उपहास करती है, और अंत में कांच के भंगुर पात्रों की तरह तोड़ देती है।

स्मरण रखो! दैहिक विलास की भूख समस्त आत्मिक आवेशों की हत्या कर देती है और बाद में मृतात्मा की अन्तिम यात्रा में उपहास हेतु श्मशान तक साथ देती है।

किन्तु, ओ सुरलोक की सन्तानो! तुम विश्रान्ति में भी अविश्रान्त रहते हो। तुम किसी के फन्दे में नहीं फंसोगे और न किसी से ठगे जाओगे।

तुम्हारा घर बढ़ती हुई नाव का लंगर नहीं।

तुम्हारा घर ऐसा चमकीला चल–चित्र नहीं जो घाव को ढकता है, बल्कि वह ऐसी भ्रू–पलक है जो आंख की रक्षा करती है।

घर की चौखट में से गुजरने के लिए तुम्हें अपने पंख समेटने न पड़ेंगे। और उसकी छत से टकराने के डर से तुम्हें मस्तक नवाने को विवश न होना पड़ेगा। या घर की दीवारें लड़खड़ाकर गिर न पड़ें–इस डर से तुम्हें सांस लेने में भी हिचकिचाहट नही होगी।

तुम्हें उन मकबरों में भी नहीं रहना पड़ेगा जो मृत व्यक्तियों ने जीवितों के लिए बनाए थे।

वह घर कैसा ही भव्य और विशाल क्यों न हो, तुम्हारे गहन आत्मतत्व का विश्राम–स्थल नहीं बन सकता।

क्योंकि तुम्हारे अन्तर में जो अनन्त बसता है वही असीम नीलाकाश का वासी है। प्रभात का कोहरा ही उसका प्रवेश–द्वार है और रात के गीत एवं मौन ही उसके वातायन हैं।

वस्त्र-परिधान

तब एक जुलाहे ने प्रश्न किया : हमारे परिधान के क्या अर्थ हैं?

अलमुस्तफा ने उत्तर दिया :

तुम्हारे वस्त्र, तुम्हारी रूप–सुषमा को अधिकांश में ढक लेते हैं, कुरूपता को नहीं ढकते।

यद्यपि वस्त्रों द्वारा तुम अपने अंग–प्रत्यंग की चेष्टाओं को स्वतन्त्र बनाना चाहते हो, पर वे ही वस्त्र बन जाते हैं तुम्हारी बन्धन–श्रृंखलाएं।

अच्छा होता कि सूर्य और हवा के साथ तुम्हारी देह का अधिक–से–अधिक संस्पर्श होता; वह स्पर्श होता तुम्हारी त्वचा का न कि तुम्हारे वस्त्रों का।

क्योंकि जीवन के श्वास–नि:श्वास सूर्य की किरणों में हैं।

तुममें से कुछ कहते हैं: इन वस्त्रों को उत्तरी हवा ने बुना है।

मैं भी कहता हूं, बेशक उत्तरी हवा ने!

लेकिन सच यह है कि वह विनय व शील के करघों पर बुना जाता है और हृदय के कोमल स्नायु–तन्तु ही उसके सूत्र का काम करते हैं।

और जब वस्त्र बुना जा चुका तो तन्तुवाय ने उसी वस्त्र को मुक्त हास से गुंजा दिया।

स्मरण रहे, शील केवल वासना–विकृत व्यक्ति की आंखीं से बचने की ढाल है।

मन की विकृति न रहे तो शील की मर्यादा अनावश्यक बन्धन और मन की विकृत अवस्था का परिणाम रह जाएगी।

और यह भी न भूलना कि पृथ्वी तुम्हारे अनावृत्त पैरों के स्पर्श से हर्षित होती है, और हवा को तुम्हारे केश–कुंतलों से खेलना अच्छा लगता है।

क्रय–विक्रय

एक व्यापारी ने क्रय–विक्रय के स्वरूप के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रकट की।

अलमुस्तफा ने उत्तर दिया :

पृथ्वी तुम्हें स्वयं अपना कोष प्रदान करती है, उस अमित कोष को अंजलियों में कैसे भरा जाता है, यह जान लो तो तुम्हें कभी कोई कमी न रहे।

पृथ्वी के इस दान–प्रतिदान से ही तुम अक्षय धन के स्वामी और सदा सन्तुष्ट रह सकते हो।

किन्तु यदि यह दान–प्रतिदान प्रेम और न्याय के आधार पर न हो, तो यह विनिमय कुछ को लोभी और कुछ को भिखारी बना देगा।

समुद्रों, खेतों और द्राक्षोद्यानों में परिश्रम करने वालो! तुम जब कपड़ा बुनने और मिट्टी घढ़ने वाले शिल्पियों से बाजार में मिलो तब,

— धरती माता की आत्मा का स्मरण करके अपनी तराजू के उन पलड़ों को शुद्ध कर लेना–जिनसे तुम्हें माल तोलना है।

— और, अपने व्यापार में उन रिक्तहस्त व्यापारियों को हस्तक्षेप न करने देना, जो केवल मोठे शब्द बोलकर तुम्हारे श्रम का फल लूटना चाहते हैं।

उन्हें कहना :

हमारे साथ खेतों में आओ या हमारे साथी श्रमिकों के साथ समुद्र–तट पर जाकर संचय के साझीदार बनो।

क्योंकि धरती और समुद्र का अक्षय कोष हमारे ही लिए नहीं, तुम्हारे लिए भी विपुल उदार है।

यदि तुम्हारे व्यवहार–व्यापार के अन्तराय में नाचने–गाने या बंसी बजाने वाले आएं, तो उनके गुणों का भी मूल्य लगाना।

क्योंकि उन्होंने भी इसी पृथ्वी के गर्भ–कोष से अपनी झोली भरी है। उनकी झोली में जो द्रव्य हैं, वे कोमल सपनों से बने हैं। वे रत्न तुम्हारी अन्तरात्मा के वरदान हैं!

और उस हाट को छोड़ने से पहले यह देख लेना कि उस बाज़ार से कोई अपनी राह

खाली हाथ तो नहीं गया।

क्योंकि ब्रह्माण्ड का पोषक भगवान् तब तक पवन के झोंकों पर चैन से नहीं सोएगा, जब तक तुम्हारे मध्य क्षुद्र से क्षुद्र जीव की भी कामना पूर्ण नहीं हो जाएगी।

अपराध और दण्ड

तब शहर के न्यायाधीशों में से एक सामने आकर बोला : 'अपराध और दण्ड' के विषय में कुछ कहिए!

उत्तर मिला :

जब तुम्हारा मन हवा के पंखों पर निर्बाध उड़ता है, तभी तुम अकेले और अनियंत्रित होकर दूसरों का अहित करते हो, अपना भी।

उसी अतिक्रमण का यह दण्ड है कि तुम देवता के द्वार पर कुछ देर तक उपेक्षित खड़े रहकर द्वार खटखटाओ।

तुम्हारा अन्तर्वासी प्रभु सागर के समान है।

वह सदा शुद्ध–निर्मल रहता है।

वह पवन की तरह है जो पक्षहीनों को ऊपर उठाता है।

तुम्हारा अन्तर्वासी प्रभु सूर्य के समान भी है।

न उसे सांपों के बिलों का अभिज्ञान है और न चीटियों के क्षुद्र छिद्रों की ही वह तलाश करता है।

किन्तु वह अन्तर्वासी अकेला तुम्हारे भीतर ही नहीं रहता।

अब भी तुममें अधिकांश मानव ही हैं और साथ ही अमानव भी।

अन्तर्वासी अपनी निद्रा में हो पर्यटन करता है–अपने जागृत रूप को खोजने के लिए।

मैं उसके नहीं, बल्कि तुम्हारे अन्तर के मानव के सम्बन्ध में ही कहूंगा।

क्योंकि वह मानव है, जो अपराध और दण्ड का विवेक रखता है; न कि तुम्हारे भीतर का सूक्ष्म और अस्पष्ट रूप से विद्यमान अतिमानव।

अपराधी के विषय में मैंने तुम्हें प्राय: यह कहते सुना है कि वह तुम्हारे मध्य का नहीं, बल्कि कोई अजनबी और तुम्हारी दुनिया में अनधिकार प्रवेश करने वाला है।

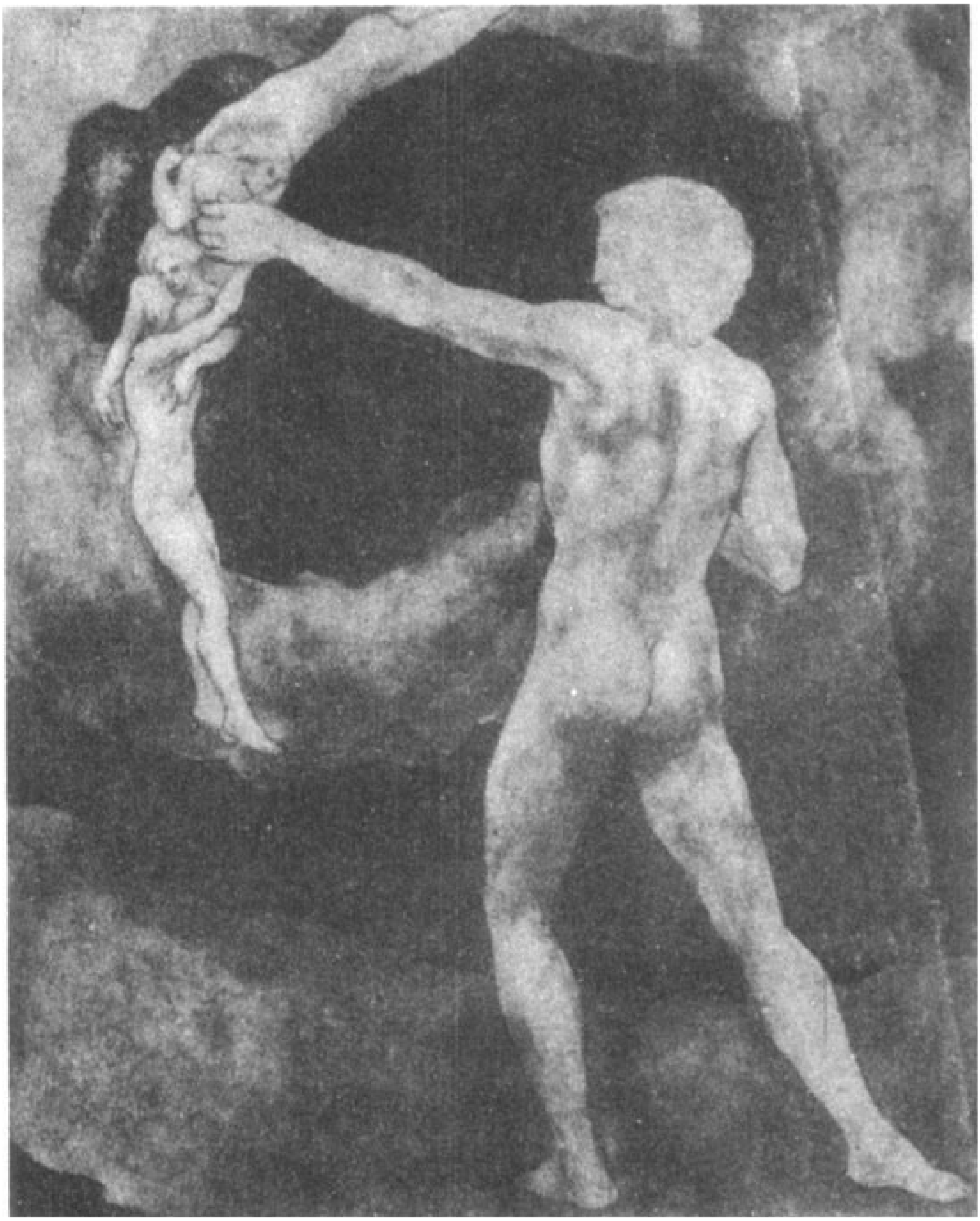
किन्तु, मैं कहता हूं, जैसे तुम्हारे मध्य परमपवित्र मानव अपनी शक्ति भर ऊंचा उठकर भी उस शिखर पर नहीं पहुंचता जो मानव मात्र के अन्तर में विद्यमान है; वैसे ही अधम से अधम मानव भी गहरी से गहरी खाई में गिरकर भी उस गहराई तक नहीं गिरता, जो मानवमात्र के अन्तर में विद्यमान है।

और जैसे वृक्ष के एक पत्ते का पीला पड़ना पूरे वृक्ष के मौन समर्थन के साथ होता है, वैसे ही समाज के किसी व्यक्ति का अपराधी होना समाज के मौन समर्थन के बिना सम्भव नहीं।

उत्सव की महायात्रा के समान यह सम्पूर्ण मानव–समाज एक ही मार्ग का सहयात्री है।

तुम्हीं पथ हो और तुम ही पथिक।

जब तुम्हारे साथ का कोई पथिक राह में ठोकर खाकर गिरता है, तो गिरकर भी वह अपने पीछे आने वालों को ठोकर खाने से सावधान करके अपना कर्त्तव्य पूरा करता है। गिरने वाला पथिक उन द्रुतगामी साथियों के प्रमाद के कारण ही गिरता है जो ठोकर खाकर भी मार्ग के पत्थर नहीं चुनते।



और यह भी एक कटु सत्य है कि,

— हत्या के लिए वह भी उत्तरदायी है, जिसकी हत्या हुई है।

— ठगा हुआ आदमी भी ठगी के अपराध से सर्वथा निर्दोष नहीं होता।

— अधम कार्यों के दायित्व से सज्जन भी सर्वथा मुक्त नहीं रह सकते।

— पापियों के कलुष काम निष्पाप व्यक्तियों के भी हाथ रंग देते हैं।

अधिक क्या, अपराधी प्राय: समाज–पीड़ित व्यक्ति का ही सताया होता है।

और यह देखा गया है कि दण्डित अपराधी प्राय: निर्दोष होता है और उन व्यक्तियों का पाप–भार वहन करता है जो स्वयं को निष्पाप–निष्कलंक कहते हैं।

श्वेत–अश्वेत, भले–बुरे और साधु–असाधु को पृथक् कक्षाओं में विभक्त नहीं किया जा सकता।

क्योंकि वे दोनों श्वेताश्वेत सूर्य के समक्ष एक ही पंक्ति में खड़े हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार सफेद और काले सूत से बुना हुआ वस्त्र।

जब वस्त्र का काला सूत टूटता है, तो जुलाहे को केवल काले सूत की ही नहीं बल्कि समस्त तन्तुवाय की छान–बीन करनी पड़ती है। तन्तुवाय की ही नहीं कपड़ा बुनने वाले करघे की भी परीक्षा करनी होती है।

यदि तुममें से कोई असाध्वी पत्नी के पाप को न्याय की तुला पर तोले तो उसे चाहिए कि वह उसके पति के हृदय को भी उसी तराजू से तोले और उसकी आत्मा को भी पलड़ों में रखकर उसकी परीक्षा करे।

अपराधी को दण्डित करने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह दण्ड देने से पहले अपराधी की आत्मा पर भी दृष्टि डाले।

यदि तुममें से कोई धर्म के नाम पर दण्ड देता है और अधर्म के वृक्ष पर कुल्हाड़ी चलाता है, तो उसे चाहिए कि वह वृक्ष की जड़ पर प्रहार करे।

तब निश्चय ही वह यही जानेगा कि वृक्ष की साधु–असाधु, उपयोगी–अनुपयोगी वस्तुएं पृथ्वी के मौन अंत:करण में एक–दूसरे की भुजाओं में गुंथी हुई हैं।

तुममें से कौन है जो निर्दोष न्याय कर सकता है। तुम उस व्यक्ति को क्या दण्ड दोगे जो बाह्याचरणों से पापरहित प्रतीत होता है किंतु अंतर्मन से पापी है?

और उसे कौन सा दण्ड दोगे, जो दूसरों का वध करने के साथ स्वयं अपनी आत्मा का भी हनन कर लेता है?

और उस पर कौन–सा दण्ड–विधान लागू करोगे, जो प्रत्यक्ष में ठग और लुटेरा है; किंतु परोक्ष में स्वयं भी, दूसरों से सताया और ठगा गया है?

और जिनकी अंतर्वेदना उनके दुष्कृत्यों से कहीं अधिक बढ़ चुकी है, उन्हें कौन–सा दण्ड दोगे?

क्या वह अनुसंताप ही न्याय नहीं, जो उसी विधान की परिणति है, जिससे तुम सदा अनुशासित हो?

न तुम निरपराध व्यक्ति के मन में अनुसंताप भर सकते हो और न ही अपराधी की आत्मा को संताप–मुक्त कर सकते हो।

वह मनस्ताप स्वयं अनाहूत मन में प्रवेश करता है, ताकि अपराधी मनुष्य अपनी अंतरात्मा को पैनी नज़र से देख सके और आत्मनिरीक्षण कर सके।

तुम, जो न्याय का दावा भरते हो, तब तक किस प्रकार न्याय को समझ सकोगे– जब तक कि तुम समग्र प्रकाश में सत्य को न देख सको?

तभी तुम वह समदृष्टि पाओगे जिसके लिए उन्नत और पतित, अहंभाव पूर्ण अंधकार और दिव्यभाव पूर्ण प्रकाश, दोनों ही, गोधूलि बेला में खड़ी एक ही छायामूर्ति

के दो पहलू हैं।

उस समय तुम्हारे समक्ष यह प्रकट हो जाएगा कि देवस्थान के शिखर का पत्थर उसकी नींव की सबसे नीची सतह में गड़े पत्थर से किसी प्रकार भी अधिक ऊंचा नहीं होता।

विधि–विधान

तब एक वकील ने विधि–विधान के स्वरूप के सम्बन्ध में प्रश्न किया।

अलमुस्तफा ने कहा :

तुम विधान बनाने में आनन्द लेते हो लेकिन उसे तोड़ने में तुम्हें और भी अधिक आनन्द आता है।

उसी तरह, जैसे समुद्र–तट पर खेलते बालक बड़ी लगन से बालू के घरौंदे बनाते हैं और दूसरे क्षण पैर की ठोकरों से तोड़ने के बाद करताली बजाकर नाच उठते हैं।

परन्तु जब तुम समुद्र–तट पर बालू के मकान बनाते हो तो समुद्र की लहरें तुम्हारे लिए रेत ढोकर लाती हैं। और जब तुम अपनी चंचलता से उन मकानों को गिरा देते हो, तो समुद्र तुम्हारे उल्लास में अपना हास मिला देता है।

समुद्र सदा निश्छल आत्मा के साथ हँसता है।

लेकिन उन लोगों के सम्बन्ध में क्या कहा जाए जिनके लिए जीवन समुद्र के समान नहीं, और जो मानव–कृत विधानों को रेत के घरौंदे नहीं मानते?

और जो जीवन को चट्टान और विधान को पैनी छैनी मानते हैं, जिसकी सहायता से वे जीवन–शिला पर अपनी ही मूर्ति अंकित करते हैं?

उनकी स्थिति उस पंगु जैसी है जो नृत्य–नायिका के प्रति द्वेष–भाव से देखते हैं।

और उस कोल्हू के बैल को क्या कहें जो अपने जूए को वरदान समझकर, वनविहारी मृगों को निरुद्देश्य पर्यटक समझता है?

और उस बूढ़े अजगर को क्या कहें जो अपनी केंचुली उतारने में भी असमर्थ होकर दूसरे समर्थ जीवों पर अशालीनता का आरोप करता है?

और उन मेहमानों को क्या कहें, जो सम्मिलित भोजों में सबसे पूर्व आते हैं और भूख से भी अधिक खाकर लौटते हुए आरोप करते जाते हैं कि सब भोजों में कानून की अवज्ञा होती है और भोज देने वाले विधान के शत्रु हैं?

उनके सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि वे भी सूर्य के प्रकाश में खड़े हैं, लेकिन सूर्य की ओर पीठ करके।

वे न केवल अपनी छाया देखते हैं और उस छाया को ही विधान मानते हैं।

— बल्कि वे सूर्य को छाया का निर्माता मात्र ही समझते हैं।

कानून की पाबन्दी जमीन पर आपादमस्तक झुककर अपनी ही छाया का अनुसरण करना ही तो है।

लेकिन तुम जब सूर्य की ओर मुख करके चलते हो, तो क्या तुम्हारी छाया तुम्हें पकड़ सकती है?

जब तुम हवा के पंखों पर उड़ते हो, तो भला कौन–सा दिग्दर्शक यन्त्र तुम्हारा पथप्रदर्शन करेगा?

मानव–विधान तुम्हारे हाथों को अपनी पराधीनता की श्रृंखला तोड़ने में तब तक बाधक नहीं बनेंगे जब तक कि श्रृंखला तुम किसी के कारागृह के द्वार पर जाकर ही नहीं तोड़ो।

विधान का भय तुम्हारे नृत्य में बाधक नहीं बनेगा, यह तुम्हारे पैर किसी दूसरे घर के दरवाजे पर आघात न करेंगे।

कौन है जो तुम्हें सजा दे सके, अगर तुम बागी होकर जन पथ पर रुकावट न डालो?

आर्फलीज के निवासियो! तुम अपने नगाड़ों को वस्त्रों से लपेटकर उसकी ध्वनि दबा सकते हो, वीणा की तारों को ढीला करके उसकी स्वर–लहरियों को शांत कर सकते हो, पर कोयल को आकाश में कूकने से नहीं रोक सकते।

स्वतन्त्रता और बन्धन

एक वक्ता ने प्रश्न किया : स्वतन्त्रता का क्या रूप है?

अलमुस्तफा ने कहा :

नगर के मुख्य द्वार पर और अपने–अपने घरों में मैंने तुम्हें स्वतन्त्रता–देवी की पूजा और स्तुति के लिए नतमस्तक होते देखा है; उसी प्रकार जैसे कोई क्रीतदास अपने अत्याचारी स्वामी के आगे सिर झुकाता है, उसकी अर्चना करता है।

दासों का नृशंस स्वामी दासों का वध भी कर देता है।

मैंने देखा है देवस्थानों के सघन कुंजों में तुम्हारे स्वातन्त्र्य–उपासक स्वतन्त्रता की जयमाला ऐसे पहनते हैं मानों कारागार की बेड़ियां पहनी हों और स्वतन्त्रता के भार का वहन ऐसे करते हैं जैसे बैल की गरदन पर लोहे के हल का भार रखा हो।

और यह देखकर मेरा दिल खून के आंसू रो उठा, क्योंकि तुम तभी मुक्त हो सकते हो, जब स्वतन्त्रता की इच्छा भी तुम्हें न बांध सके, और जब तुम स्वतन्त्रता को अपना लक्ष्य और अभीष्ट कहने के लाभ से भी मुक्त हो जाओ।

वास्तव में तुम तभी स्वतन्त्र होंगे जब तुम्हारे दिन सर्वथा चिन्तामुक्त न होंगे, और रातें शोक या अभाव से सर्वथा रहित न होंगी।

अपितु जब ये आकांक्षाएं और चिन्ताएं चारों ओर से तुम्हें घेर लेंगी और तुम उनसे भी ऊपर उठकर नि:संग, निर्बन्ध रहोगे तभी तुम सच्चे अर्थों में स्वतन्त्र होंगे।

तुम अपने दिवा–रात्रि के बन्धनों से मुक्त हो भी कैसे सकते हो, जब कि तुम उस बन्धन–श्रृंखला को तोड़ नहीं देते जो तुमने अपनी उदय–वेला में ही अपने अतीत के पैरों में बाध ली थी?

सच तो यह है कि स्वतन्त्रता की बन्धन–श्रृंखला ही सबसे शक्तिशाली है, जिसकी कड़ियां सूर्य में चमककर तुम्हारी आंखों को चकाचौंध कर देती हैं।

स्वतंत्र होने की विधि क्या है?–यही कि अपने अस्तित्व का नाम शेष करके बिखेर देना, जिससे कि तुम अपने से भी स्वतंत्र हो सको।

यदि अन्यायमूलक विधि–विधानों को मिटाने का नाम हो मुक्ति है, तो स्मरण रखो कि इन विधानों के अक्षर तुमने अपने हाथों अपने ललाट पर लिखे थे।

मात्र विधान की पुस्तकें जलाकर भी तुम उन्हें नाम शेष नहीं कर सकते। न ही

अपने न्यायाध्यक्षों के ललाट पर जल उड़ेलकर उन्हें धो सकते हो, चाहे सौ समुद्रों का जल उड़ेल दो।

यदि किसी सत्ताधीश को अपदस्थ करने की इच्छा है तो पहले उसे अपने हृदयासन से अपदस्थ करो।

एक अत्याचारी राज स्वतन्त्रताप्रिय तथा स्वाभिमानी प्रजा पर बलपूर्वक शासन नहीं कर सकता; ऐसा शासन तभी संभव है यदि प्रजा की स्वतन्त्र भावना में अराजकता और गर्व में निर्लज्जता हो |

और यदि यह कोई ऐसा संताप है जिसे तुम मिटाना चाहते हो, तो स्मरण रखो कि उस संताप का तुमने स्वयं वरण किया है, किसी ने बलपूर्वक तुम्हारे गले में नहीं डाला।

और यदि यह सत्ता केवल भयमूलक है तो भी उसका मूल–स्थान तुम्हारे हृदय में है, न कि उस सत्ता के हाथों में जिससे तुम भयभीत हो। जब तक तुम स्वयं उस भय को अपने अन्त:करण से दूर न कर दो जब तक मित्र–शत्रु का निर्णय न कर सकोगे।

निश्चय ही ये सब तत्व तुम्हारे अन्तर में विद्यमान हैं, चाहे वे तुम्हारी रुचि के अनुकूल हों या प्रतिकूल।

ये सब द्वन्द्वात्मक तत्व तुम्हारे अन्दर परस्पर आबद्ध रहते हैं। इनमें अभीष्ट–अनभीष्ट, रुचिपूर्ण–अरुचिपूर्ण, उपादेय–हेय सभी प्रकार के द्वन्द्ध विद्यमान रहते हैं। ये द्वन्द्व तुम्हारे अन्तर में प्रकाश और छाया के युगल रूप में एकसाथ निवास करते हैं।

जब छाया विलुप्त होती है तब छायानुगामी प्रकाश ही छाया बन जाता है, परानुवर्ती प्रकाश के लिए।

इसी प्रकार तुम्हारी स्वतन्त्रता जब अपनी श्रृंखलाओं को शिथिल कर देती है तब अपनी परानुवर्ती बृहत् स्वतन्त्रता की श्रृंखला बन जाती है।



तर्क और आवेश

नगर की पुजारिन ने प्रश्न किया : तर्क और आवेश का जीवन में कया स्थान है?

अलमुस्तफा बोले : तुम्हारी आत्मा प्राय: संघर्षभूमि बनी रहती है जहां तुम्हारे तर्क एवं विवेक तुम्हारे आवेशों और अभिलाषाओं से युद्ध करते रहते हैं।

काश, मैं तुम्हारी आत्मा का शांतिदूत होता जिससे तुम्हारे मन के वैषम्य और प्रतिस्पर्धा को एकरस बना देता।

पर जब तक तुम शांति की भावना से प्रेरित नहीं होते और अपने सम–विषम तत्वों से एक सदृश अनुराग नहीं बनाते तब तक यह नहीं हो सकता |

तुम्हारे उद्वेग और तर्क तुम्हारे सागरवर्ती जीवन–नौका के पतवार हैं।

उन पतवारों में से कोई भी टूट जाए तो या तो वह नौका लहरों में बह जाएगी अथवा मध्य सागर में गतिहीन होकर ठहर जाएगी। तुम अपने लक्ष्य तक न पहुंच पाओगे। कयोंकि तर्क–प्रधान शक्ति अवरोधक होती है और अवरोधहीन आवेश ऐसी ज्वाला है जो अपने–आपको भस्म कर डालती है।

अतः ऐसा मार्ग ग्रहण करो कि तुम्हारी आत्मा तुम्हारे तर्क को हृदयावेशों के ऐसे शिखर पर पहुंचा दे कि तर्क स्वयं गीतों में खिल उठे।

तुम्हारी आत्मा से निर्देश पाकर तुम्हारी मेधा तुम्हारे आवेशों का पथ–प्रदर्शन करे जिससे तुम्हारे सहज आवेश दिन–प्रतिदिन अपनी हो आत्माग्नि में तपें और फोनिक्स[1] की तरह, अपनी ही भस्म से नवीन जीवन लेकर प्रकट हों।

मेरी कामना है कि तुम बुद्धि–प्रधान विवेक और प्रवृत्ति–प्रधान उद्वेग, दोनों को अपने घर के दो सम्मानित अतिथियों की तरह स्थान दो।

तब निश्चय ही तुम एक अतिथि के साथ दूसरे की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ व्यवहार नहीं करोगे, क्योंकि यदि तुम एक की भी ऐसी अवज्ञा करोगे तो दोनों के प्रेम और विश्वास से वंचित हो जाओगे।

जब तुम पर्वतों पर चिनार के घने वृक्षों की छांह में बैठकर दूर के शान्त खेतों और चरागाहों के सौम्य सौन्दर्य से साम्य स्थापित करो, तो तुम्हारे मौन हृदय में यह भाव ध्वनित होना चाहिए : विवेक में विधाता की विश्रान्ति है।

और जब तूफान आएं तथा झंझावातों से जंगल कांप उठे, मेघ और दामिनी के गर्जन–तर्जन में आकाश का गर्व चतुर्दिक् घोषित हो उठे, तब तुम्हारे भीति–त्रस्त हृदय

से ये शब्द ध्वनित होने चाहिए : आवेश में विधाता की गति है।

और क्योंकि तुम भी विश्व–प्राण के एक श्वास हो और विश्वोद्यान के एक पुत्रवत् हो, तुम्हें भी बुद्धि में विश्राम लेना और आवेश में गतिमान होना है।

---

1. एक पौराणिक पक्षी।

कष्ट और आनन्द

एक महिला ने प्रश्न किया : कष्ट क्या है?

अलमुस्तफा ने कहा :

तुम्हारे कष्ट सीपी के उन परदों के खुल जाने की प्रक्रिया हैं जो परदे तुम्हारे ज्ञान रूपी मोती को बन्द किए रखते हैं।

जैसे किसी फल को सूर्य के प्रकाश में आने के लिए बीज के प्रस्फुटन–कष्ट को सहन करना पड़ता है वैसे ही तुम्हें विकास के पूर्व कष्ट सहन करना पड़ेगा।

और यदि तुम जीवन के अन्य अनुदिन घटने वाले आश्चर्यों को सहर्ष देखते हो तो तुम्हें यह कष्ट भी किसी आनन्द से कम आश्चर्यप्रद प्रतीत न होंगे।

और तब तुम अपने हृदय की विविध ऋतुओं को उसी प्रकार प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करोगे, जिस प्रकार तुम अपने खेतों के ऋतु–परिवर्तनों को करते हो।

तभी तुम शोकग्रस्त हृदय के शिशिर शीत को भी प्रशांत मन से कह सकोगे।

कष्ट का अधिकांशत्व तुम्हारा स्वयं शापित ही होता है। कष्ट एक कड़वी औषधि है। तुम्हारा अन्तर्वासी वैद्य तुम्हारी रोगार्त आत्मा को कष्ट की कड़वी औषधि से ही नीरोग करता है|

उस वैद्य पर श्रद्धा रखो और मौन–प्रशांत मन से उसकी औषधि का सेवन करो।

उसका हाथ प्रत्यक्ष रूप से कितना ही कठोर क्यों न हो, उसका संचालन अत्यन्त कोमल हृदय द्वारा ही होता है।

उसका औषधि–पात्र यद्यपि तुम्हारे होंठों को गरम लगती है; किन्तु स्मरण रहे, वह मृत्पात्र विधाता के अश्रुजल से सिक्त मिट्टी से बना है।

आत्मज्ञान

एक अन्य मनुष्य ने प्रश्न किया : आत्मज्ञान क्या है?

अलमुस्तफा ने उत्तर दिया :

तुम्हारा मौन हृदय दिन और रात के सब रहस्य जानात है। लेकिन तुम्हारे कान उस ज्ञान की अभिश्रुति को व्याकुल ही रहते हैं।

तुम उसी ज्ञान को, जो विचारों के रूप में तुम्हारा हृदय जानता है, शब्दों में सुनना चाहते हो।

तुम अपने स्वप्नों की मूर्त काया का स्पर्श करना चाहते हो, अपनी अंगुलियों से।

यही अभीष्ट भी है।

तुम्हारे आत्मानिहित निर्भर–कूप के लिए अनिवार्य है कि वह बाहर फूटकर समुद्रगामी बने।

तभी तुम्हारी अथाह गहराई का ज्ञान–कोष चक्षुगत होगा। परन्तु इस ज्ञानकोष को कभी तराजू पर न तोलना।

और न कभी इस अतल आत्मज्ञान की गहनता को मापदण्ड से मापने का यत्न करना |

क्योंकि आत्मा अथाह और अनन्त सागर के समान है।

कभी यह न कहना कि 'मैंने समस्त सत्य पा लिया है' बल्कि कहना 'मैंने एक' सत्य पाया है।'

यह न कहना कि 'मैंने आत्मा का मार्ग जान लिया है।" बल्कि यह कि 'अपने मार्ग पर चलते हुए आत्मा से भेंट की है।'

क्योंकि आत्मा प्रत्येक मार्ग पर अभियान करती है।

वह किन्हीं बंधी रेखाओं पर नहीं चलती, न ही वह सरू वृक्ष की तरह आसमान को भेदती हुई ऊंचा उठती है।

आत्मा अपने को स्वयं अनावृत करती है–जैसे अंसख्य पंखों वाला कमल।

शिक्षक

एक शिक्षक ने प्रश्न किया : शिक्षा क्या है?

अलमुस्तफा ने उत्तर दिया :

तुम्हारे ही भीतर तुम्हारे ज्ञान के उषाकाल में जो ज्ञान सोया–सा रहता है, उसे हो जागरित करने के अतिरिक्त शिक्षक कुछ नहीं कर सकता।

मंदिरों की छाया में बैठकर शिष्यों को विद्या–दान देने वाले ज्ञानी भी केवल अपनी श्रद्धा और प्रेम का ही अंश अर्पित कर सकते हैं, अपने ज्ञान का नहीं।

यदि वे सच्चे सेवक हैं तो वे तुम्हें अपने ज्ञान–कोष्ठ में बलात् प्रविष्ठ नहीं कराएंगे, बल्कि वे तुम्हें तुम्हारे ही अन्तर्मन के द्वार तक जाने का मार्ग–दर्शन करेंगे।

ज्योतिषी केवल आकाश–स्थित रहस्यों के सम्बन्ध में तुमसे अपने ज्ञान की चर्चा करेगा–तुम्हें ज्ञान की शिक्षा नहीं दे सकेगा।

गायक विश्व की दसों दिशाओं में व्याप्त स्वर–लहरी को तालबद्ध करके तुम्हारे सम्मुख रख सकता है, किन्तु वह तुम्हें ताल–ज्ञान देने के अनुकूल श्रवण–शक्ति और गीतों का वह स्वर नहीं दे सकता जो संगीत में बंधता है।

गणना–शास्त्र में निष्णात विद्वान् केवल तुमसे संख्या और मापदण्ड–सम्बन्धी शिक्षा की चर्चा ही कर सकता है, तुम्हें गणित का गूढ़ ज्ञान नहीं दे सकता।

क्योंकि एक मनुष्य की अन्तर्दृष्टि दूसरे मनुष्य को अपनी ज्ञान–चक्षु उधार नहीं दे सकती।

और जिस प्रकार ईश्वर की निगाह में प्रत्येक व्यक्ति अकेला है, उसी प्रकार ईश्वर के ज्ञान में भी अकेला ही रहता है|

मित्र कौन?

एक युवक ने प्रश्न किया : मित्र कौन है?

अलमुस्तफा ने उत्तर दिया :

तुम्हारा मित्र ही तुम्हारे आवश्यक कार्यों की पूर्ति का साधन बनता है।

वह तुम्हारा क्षेत्र है, जिसमें तुम प्रेम से बीज वपन करते हो और कृतज्ञतापूर्ण हृदय के साथ फल पाते हो।

वही तुम्हारे अन्न और आवास की रिक्तता को पूर्ण करता है |

क्योंकि देह और मन भूखे होते हैं तो तुम उसकी शरण जाते हो।

जब तुम्हारा मित्र तुम्हारे सामने मन का भेद कहता है तो तुम 'ना' कहने में संकोच नहीं करते, और न ही 'हां' कहने में भय मानते हो।

और जब वह चुप होता है तो भी तुम्हारा हृदय उसके हृदय की बात सुनने को तत्पर रहता है।

क्योंकि मैत्री में सब विचार, आशाएं और इच्छाएं मौन में ही जन्म लेती और अन्तर के अप्रकट आनन्द में ही बंट जाती हैं। मित्र से विदा होते समय शोक प्रकट न करो।

क्योंकि जिन गुणों के कारण तुम उनसे प्रेम करते हो, वे वियोग में और भी स्पष्ट हो जाएंगे, जैसे पर्वतारोहो के लिए पर्वत का सौंदर्य तल की भूमि से अधिक मनोरम हो जाता है।

मैत्री का लक्ष्य केवल आत्मभाव की वृद्धि ही होना चाहिए।

क्योंकि जो प्रेम अपने ही रहस्य–कोष के अनावरण के अतिरिक्त स्वार्थ की अपेक्षा रखता है वह प्रेम नहीं, एक पाश है; जिसमें केवल निरर्थक वस्तुएं ही फंसती हैं।

अपनी सर्वश्रेष्ठ निधि से ही मित्र की वन्दना करो।

जीवन के अवरोह में वह तुम्हारा संगी है तो आरोह के सुखद क्षणों में भी उसे भागीदार बनाओ।

व्यर्थ काल–क्षेप करने के अर्थ हो तुम मित्र की तलाश मत करो।

बल्कि समय के सर्वश्रेष्ठ सद्व्यय के लिए ही उसका स्मरण करो।

कारण, तुम्हारी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होना उसका धर्म है–न कि तुम्हारी रिक्तता को भरना।

मैत्री की मधुरता में उल्लास भरने दो।

क्योंकि छोटी–छोटी वस्तुओं के हिमकणों में ही हृदय का प्रभात उदित होता है और वह उससे ताजगी भी लेता है।

वार्तालाप

तब एक विद्वान ने पूछा : 'वार्तालाप' का क्या महत्व है?

उत्तर मिला :

तुम्हारी वाणी तभी मुखर होती है जब विचार–श्रृंखला से उसका साम्य टूट जाता है।

और जब तुम अपने हृदय के एकान्त में वास नहीं करते तब तुम होंठों पर शब्द बनकर रहते हो और तब तुम्हारे स्वर सस्ते मनोरंजन के उपकरण मात्र बनकर रह जाते हैं।

और तब ऐसे स्वर–विनिमय में विचारों का गला घुट जाता है|

क्योंकि विचारों का पक्षी रिक्त आकाश में उड़ने वाला है, स्वरों के पिंजरे में वह अपने पंख तो खोल देता है, पर उड़ नहीं सकता|

तुममें ऐसे भी हैं, जो अकेलेपन के भय से बचने को वाचाल की शरण खोजते हैं।

एकान्त की नि:शब्दता उनकी आंखों के समक्ष उनके ही व्यक्तित्व का वास्तविक स्वरूप प्रकट कर देती है, जो उन्हें अभीष्ट नहीं होता।

तुममें कुछ ऐसे भी हैं, जो बोलते हैं और ऐसे सत्य का अनावरण कर जाते हैं, जिससे वे स्वयं परिचित नहीं होते।

कुछ ऐसे भी हैं, जो अपने अन्तर में सत्य को छिपाए रखते हैं, शब्दों में नहीं कहते।

इन्हीं आत्मा को अनिर्वचनीय कहने वाले हृदयों में आत्मा मौन लय–ताल के साथ रहती है।

जब तुम राह में या हाट में अपने मित्र से मिलो, तो तुम्हारी आत्मा तुम्हारे होंठों को हिलाए और वाणी को निर्देशित करे।

ताकि तुम्हारी आत्मा की आवाज उसकी आत्मा के कानों तक पहुंच जाए।

क्योंकि उसकी अन्तरात्मा ही तुम्हारे हृदय के सत्य को ग्रहण करेगी|

जैसे सुरा का रंग भूल जाने और सुरा–पात्र के टूट जाने पर भी उसके स्वाद की स्मृति बनी रहती है।

समय–विभाजन

एक ज्योतिषी ने प्रश्न किया : समय का क्या भेद है?

उत्तर मिला :

तुम अपरिमेय, परिमाणातीत समय को मापा करते हो। तुम अपने व्यावहारिक कार्यों का विभाजन नहीं बल्कि अपनी आत्मा का निर्देशन भी ऋतुओं और घण्टों के अनुसार करते हो।

समय को तुम नदी मानकर उसके तट पर बैठ जाते हो और उसके प्रवाह को देखा करते हो।

फिर भी कालातीत अन्तरवासी को कालातीत जीवन का ज्ञान रहता है।

वह जानता है कि विगत समय आज की स्मृति मात्र है, और आगामी कल आज का स्वप्न।

और वह यह भी जानता है कि जो तुम्हारे अन्दर संगीतमय है, वह अब भी उस आदि क्षण की परिधि में बस रहा है— जिसने आकाश के नक्षत्रों को ब्रह्माण्ड के शून्य में बिखेरा था।

तुममें से कौन है जो यह नहीं जानता कि उसकी प्रेम करने की शक्ति असीम है?

और वह कौन है, जिसे इस बात का ज्ञान नहीं कि प्रेम असीम होते हुए भी उसी के व्यक्तित्व में केन्द्रीभूत है...वह प्रेम जो एक विचार से दूसरे विचार में और एक कार्य से दूसरे कार्य में गतिमान नहीं होता?

क्या प्रेम की तरह काल भी अविभाज्य और असीम नहीं?

किन्तु यदि तुम्हारी कल्पना काल को ऋतुओं में बांटना ही चाहती है, तो इस रीति से बांटो कि प्रत्येक ऋतु अन्य ऋतुओं को अपने आलिंगन में ले ले।

और आज का वर्तमान भूतकाल को आज की स्मृतियों और भविष्य की अभिलाषाओं से इस तरह बांध ले कि सब एकरूप हो जाए।

अच्छाई और बुराई

नगर के एक वरिष्ठ नागरिक ने अच्छाई और बुराई के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रकट की।

उत्तर मिला :

मैं केवल तुम्हारे अंत:स्थित अच्छाई के सम्बन्ध में कह सकता हूं—बुराई के सम्बन्ध में नहीं।

कारण, बुराई क्या है? अच्छाई अपनी ही भूख–प्यास से सन्तप्त होती है तो बुराई का रूप ले लेती है।

जब अच्छाई की क्षुधा जाग उठती है तो वह अन्धकारपूर्ण कन्दराओं में भी तृप्ति के अर्थ जाता है, और जब वह प्यासा होता है तो वह गंदला जल पीने को भी आतुर हो जाता है।

तुम तभी तक अच्छे रह सकते हो, जब तक तुम अपने में स्थित रहते हो।

किन्तु जब तुम अपने में स्थित नहीं रहते, तब भी तुम निकृष्ट नहीं हो जाते, विभक्त ही होते हो।

और, केवल विभक्त होने में ही कोई घर चोरों का अड्डा नहीं बन जाता।

पतवार रहित नौका द्वीपों में निरुद्देश्य घूमती अवश्य है, डूबती नहीं।

तुम तभी अच्छे होते हो, जब अपने अन्तर से दूसरे की झोली भरते हो |

किन्तु अपने लाभ का लोभ भी तुम्हें बुरा नहीं बना देता। जब तुम स्वहित–सम्पादन करते हो, तो तुम उस वृक्ष की जड़ के समान हो जो स्वार्थवश पृथ्वी के वक्ष पर अपना पूर्ण स्वत्व समझ लेता है।

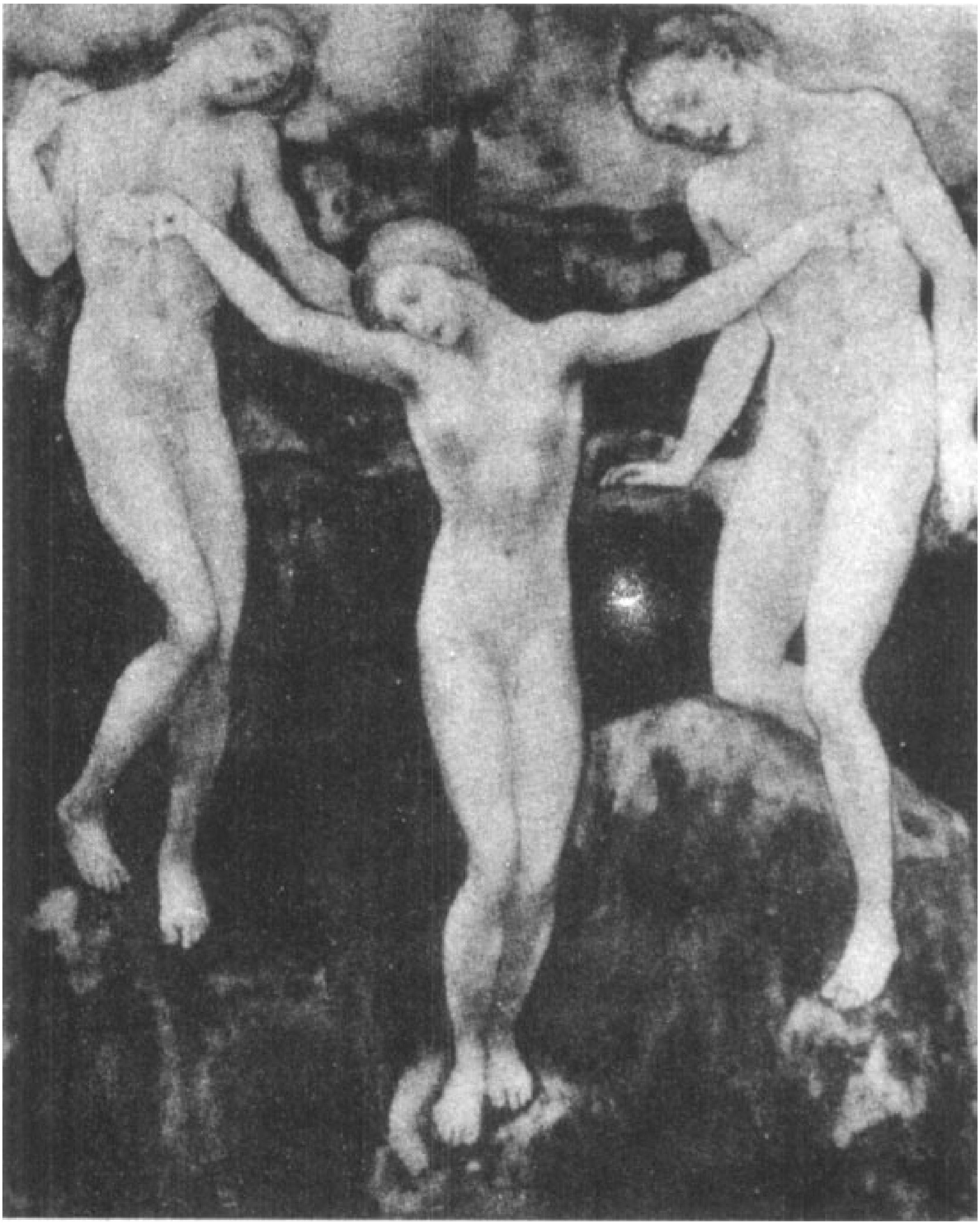
सच तो यह है कि फल कभी जड़ों से नहीं कह सकता कि तुम भी मेरे ही समान बनकर पको और भरपूर होकर प्रदान करो।

क्योंकि फल का हित इसी में है कि वह दान करे और जड़ का हित इसी में है कि वह ग्रहण करे।

तुम तब अच्छे होते हो, जब तुम पूर्ण जागरण में बोलते हो। लेकिन जब सोते हुए तुम्हारी जिह्वा लड़खड़ाती है तब भी तुम अधम नहीं बन जाते।

कई बार वह हकलाती जिह्वा का भाषण भी निर्बल वाणी का पोषक बन जाता है।

तुम अच्छे होते हो, जब तुम अपने ध्येय की ओर दृढ़ता और साहस के साथ बढ़ते हो।
लेकिन यदि लंगड़ाते हुए बढ़ते हो, तो भी तुम नीच नहीं बन जाते।
लंगड़ा कर चलने वाले भी आगे ही बढ़ते हैं पीछे तो नहीं मुड़ते।



परन्तु, तुम जो अच्छे और शीघ्रगामी हो, इस बात का ध्यान रखो कि तुम लंगड़ों के साथ दयापूर्ण सहानुभूति दिखलाने को ही लंगड़ाने न लग जाओ।

तुम असंख्य रीतियों से श्रेष्ठ हो—और जब तुम श्रेष्ठ नहीं होते तो भी अधम नहीं हो जाते।

तब तुम केवल प्रमाद और पलायन के शिकार मात्र होते हो।

दुःख यही है कि मृग कछुए को द्रुतगामी बनने की शिक्षा नहीं दे सकता।

अपने महान 'स्व' को पाने की तुम्हारी अनवरत अभिलाषा में ही तुम्हारी श्रेष्ठता निहित है। और वह अभिलाषा तुम सबमें एक समान है।

किन्तु तुममें कुछ ऐसे हैं, जिनमें इस आत्मशोध की कामना उस जलधारा के समान है, जो हिमावृत्त गिरिशिखरों के रहस्य और विस्तृत अरण्यों के संगीतों को झोली में छिपाए सदा समुद्र की ओर दौड़ा करती है।

और कुछ ऐसे हैं, जिनमें यह कामना उस मैदानी नदी का रूप ले लेती है, जो समुद्र तक पहुंचने से पूर्व ही अनेक धाराओं में बंटकर मन्द होते–होते धरती में हो खो जाती है।

लेकिन ऐ पहुंचे हुए साधको! तुम अपने इन मन्दगामी आत्मशोधकों से यह न कहना कि तुम इतने मन्द और श्लथ किसलिए हो?

क्योंकि जो सचमुच श्रेष्ठ होते हैं वे कभी नग्न व्यक्ति से यह नहीं पूछते कि तुम्हारे वस्त्र कहां हैं? न ही वे किसी अभागे निराश्रित से पूछते हैं कि तुम्हारे घर का क्या हुआ?

प्रार्थना

तब पुजारी ने प्रश्न किया : प्रार्थना का क्या स्वरूप है?

उत्तर मिला :

तुम कष्ट में या स्वार्थ–सिद्धि के अर्थ ही प्रार्थना करते हो। उचित है कि तुम पूर्ण आनन्द की स्थिति में भी उसी तन्मयता से प्रार्थना करो।

क्योंकि प्रार्थना का अर्थ ही अपनी आत्मा को विश्वास के सम्पर्क में लाना है।

यदि प्रार्थना के माध्यम से तुम्हें अपने मानस के अन्धकार को बाहर बिखेर कर ही सन्तोष प्राप्त होता है तो निश्चय हो अपनी अन्तरात्मा के प्रकाश को व्यापक करने में भी तुम्हें अनुपम उल्लास प्राप्त होगा।

और, अगर आत्मा में प्रार्थना की उत्कण्ठा उठने पर तुम्हें रोने की ही प्रेरणा होती है तो उचित है कि तुम्हारी आत्मा तुम्हें प्रार्थना के लिए तब तक पुनः–पुनः प्रार्थना–विमुख करे, जब तक तुम रोना भूलकर हँसते हुए प्रार्थना करना न सीख जाओ।

जब तुम प्रार्थना करते हो, तो तुम ऊंचे उठकर उन महती आत्माओं से भेंट करते हो जो उस क्षण प्रार्थना–रत हैं और जिनसे प्रार्थना–वेला के अतिरिक्त कभी भेंट नहीं हो सकती।

इसलिए परमदेव के उस अदृश्य मन्दिर में तुम्हारा गमन केवल मिलन–लालसा से ही होना चाहिए।

क्योंकि देवालय में यदि तुम केवल आकांक्षा बनकर ही जाओगे तो तुम्हें वह प्राप्त न होगा।

जो लोग मन्दिर में अपने को अधम घोषित करने के लक्ष्य से ही जाते हैं, उनके उत्कर्ष में भी प्रभु की सहायता प्राप्त नहीं होती!

और यदि देवालय के इस प्रवेश का अर्थ परार्थ भिक्षा मांगना ही है तो भी तुम्हारी प्रार्थना नहीं सुनी जाएगी।

तुम्हारे लिए तो इतना ही पर्याप्त है कि तुम उस अदृश्य मन्दिर में प्रवेश करो|

मैं प्रार्थना योग्य शब्दों की शिक्षा देने का अधिकार नहीं मांगता|

प्रभु हमारे शब्दों को नहीं सुनते—केवल तभी सुनते हैं जब वे स्वयं भीतर बैठकर तुम्हारे होंठों से उन शब्दों को बुलवाते हैं|

अगम सागरों, सघन वनों और पर्वतों की प्रार्थनाओं को भी मैं नहीं सुना सकता।

लेकिन तुमने तो गीत के जन्मस्थान पर जन्म लिया है, चाहो तो तुम स्वयं उस

गीत को अपने हृदय की धड़कनों में सुन सकते हो।

यदि तुम रात के गाढ़े मौन में कुछ सुनने की कोशिश करोगे, तो उन्हें यही प्रार्थना करते पाओगे :

— हे प्रभो! हमारा अस्तित्व तुम्हारे अस्तित्व पर ही निर्भर है। तुम्हारी ही तो यह अभिलाषा है, जो हमारे मन में जाग रही है।

— तुम्हारी ही तो यह कामना है, जिसकी हम कल्पना करते हैं।

— हमारे अन्तर में यह तुम्हारी ही तो प्रेरणा है, जो हमारी रातों को दिन बनाती है; तिमिर को प्रकाश देती है। तिमिर–प्रकाश दोनों तुम्हारे ही हैं।

— हे अन्तर्यामी! हम तुमसे क्या मांगे? मन में आने से भी पहले तुम तो हमारे मनोरथों को जानते हो।

— हमारे मनोरथ तुम्हीं हो–हम तुमसे तुम्हीं को मांगते हैं। जब तुम हमें अपना कुछ अंश प्रदान करते हो, तो मानो हमें सब कुछ दे देते हो।

आनन्द क्या है?

तब एक अरण्यवासी साधु ने, जो वर्ष में एक बार नगर में जाता था, जिज्ञासा प्रकट की : आनन्द क्या है?

उत्तर मिला :

आनन्द एक स्वतन्त्र गीत है,
किन्तु आनन्द ही स्वतन्त्रता नहीं है।
वह तुम्हारी कामनाओं का पृष्ठ है,
तथापि वह कामनाओं से भिन्न नहीं।
वह है एक गहराई जो शिखर छूने को आतुर है,
तथापि वह न गहराई है न उंचाई।
वह एक पंजरबद्ध पक्षी के पंखों की फड़फड़ाहट है,
तथापि वह सोमा में बंधा आकाश नहीं।
सचमुच आनन्द एक स्वातन्त्र्य–गीत है।
उचित है कि तुम भी इसे पूर्ण तन्मय होकर गाओ,
किन्तु इस गायन–व्यापार में अपने–आपको खो देने का मैं निर्देश नहीं दूंगा।

तुममें से कुछ नवयुवक आनन्द की शोध में सब कुछ भूल जाते हैं, तब उनकी आलोचना और निन्दा होती है।

परन्तु मैं उनकी आलोचना अथवा निन्दा नहीं करुंगा, बल्कि उनके सफल मनोरथ होने की प्रार्थना करूंगा।

ऐसे शोधकों को सुख की प्राप्ति तो होगी, किन्तु आनन्द की ही नहीं।

आनन्द की सात बहिनें हैं, किन्तु जो सबसे कम सुन्दर है वह भी आनन्द से अधिक रमणीय है।

वे सब उसे प्राप्त हो जाती हैं, जैसे कन्द–मूल के लिए जमीन खोदने वाले को कदाचित् धनकोष मिल जाए।

तुममें से कुछ पुराण पुरुष अतीत के आनन्दमय उपभोगों को यौवन में किए गए पाप समझकर खेद मानते हैं।

यह खेद मनरूपी आकाश पर मेघ बनकर छा जाता है, प्रायश्चित नहीं बनता।

उन्हें अपने आनन्दमय उपभोगों का स्मरण कृतज्ञता भरे दिल से करना चाहिए, जैसे ग्रीष्म की फसल का किया जाता है |

यदि किसी को इस खेद–प्रकाश में ही समाधान मिलता है तो वे खेद करने में स्वतन्त्र हैं।

तुममें से कुछ ऐसे हैं, जो इतने युवक नहीं कि आनन्द की खोज कर सकें, और इतने वृद्ध भी नहीं कि अतीत के आनन्द का स्मरण करें।

वे इस शोध और स्मृति के भय से बचने के लिए ही आनन्द का त्याग कर देते हैं, ताकि कहीं उनसे आत्मा की उपेक्षा का अपराध न हो जाए।

परन्तु उनके इस त्याग में भी आनन्द की एक झलक है।

वे निरन्तर कांपते हाथों से कन्द–मूल खोदते हुए भी आनन्दकोष प्राप्त कर लेते हैं।

भला, आत्मा के प्रति अपराध कौन कर सकता है?

क्या रात्रि की नीरवता को भंग करके कोयल अपराध करती है? और क्या जुगनू रात्रि के अन्धकार में चमक कर नक्षत्रों की अवहेलना करते हैं?

और क्या तुम्हारे ईंधन का धुआं पवन के परिवहन के लिए बोझिल हो जाता है?

क्या तुम यह समझते हो कि आत्मा एक शांत सरोवर के समान प्रशान्त है जो हाथ की छडी से अशान्त हो सकती है?

प्राय: आनन्द का विर्सजन करते हुए तुम अपनी इच्छाओं को हृदय की गहराई में भर लेते हो।

कौन जाने, आज तुमने जिसका त्याग किया है, वह कल उठने की प्रतीक्षा कर रहा हो?

इस शरीर को अपनी उत्तराधिकार में प्राप्त भूमि और प्रकृतिगत आवश्यकताओं का ज्ञान है, उसे ठगा नहीं जा सकता |

तुम्हारा शरीर तुम्हारी आत्मा की वीणा है।

उसके तारों में मधुर संगीत या अस्वरहीन कोलाहल भरना तुम्हारे हाथ है।

तुम मन–ही–मन सोचते होंगे, हम सुख की शोध में श्रेय का अश्रेय से भेद स्थापित कैसे करेंगे?

मैं उसका उपाय बतलाता हूं।

अपने खेतों और उपवनों में जाओ, तब तुम्हें पता लगेगा कि फूलों से मधु एकत्र करने में ही मधुमक्खी को आनन्द मिलता है।

परन्तु फूलों को भी इसी बात से आनन्द मिलता है कि वे अपना मधुकोष मधुमक्षिका को अर्पण कर दें।

क्योंकि मधुमक्षिका के लिए फूल ही जीवन–स्रोत है, मधुमक्षिका प्रणय–दूत भी है।

और दोनों के लिए आनन्द को ग्रहण करना और आनन्द का प्रदान करना आवश्यक जीवन–धर्म भी है और आनन्द का स्रोत भी।

ऐ आर्फलीज–निवासियो! तुम भी आनन्द के शोध में पुष्प और मधुमक्षिका का अनुकरण करो।

सुन्दरता

एक कवि ने सौन्दर्य के सम्बन्ध में जिज्ञासा व्यक्त की।

अलमुस्तफा ने उत्तर दिया :

सौन्दर्य की खोज में भटकना निरर्थक है, वह तो तभी प्राप्त होगा जब वह स्वयं तुम्हारा पथ और प्रदर्शक न बन जाए।

उसका स्वरूप–वर्णन तभी संभव है, जब वह स्वयं तन्तुवाय बन तुम्हारे शब्दों का चयन न करे।

पीड़ित और संतप्त व्यक्ति कहते हैं–सौन्दर्य करुण और मृदु है?

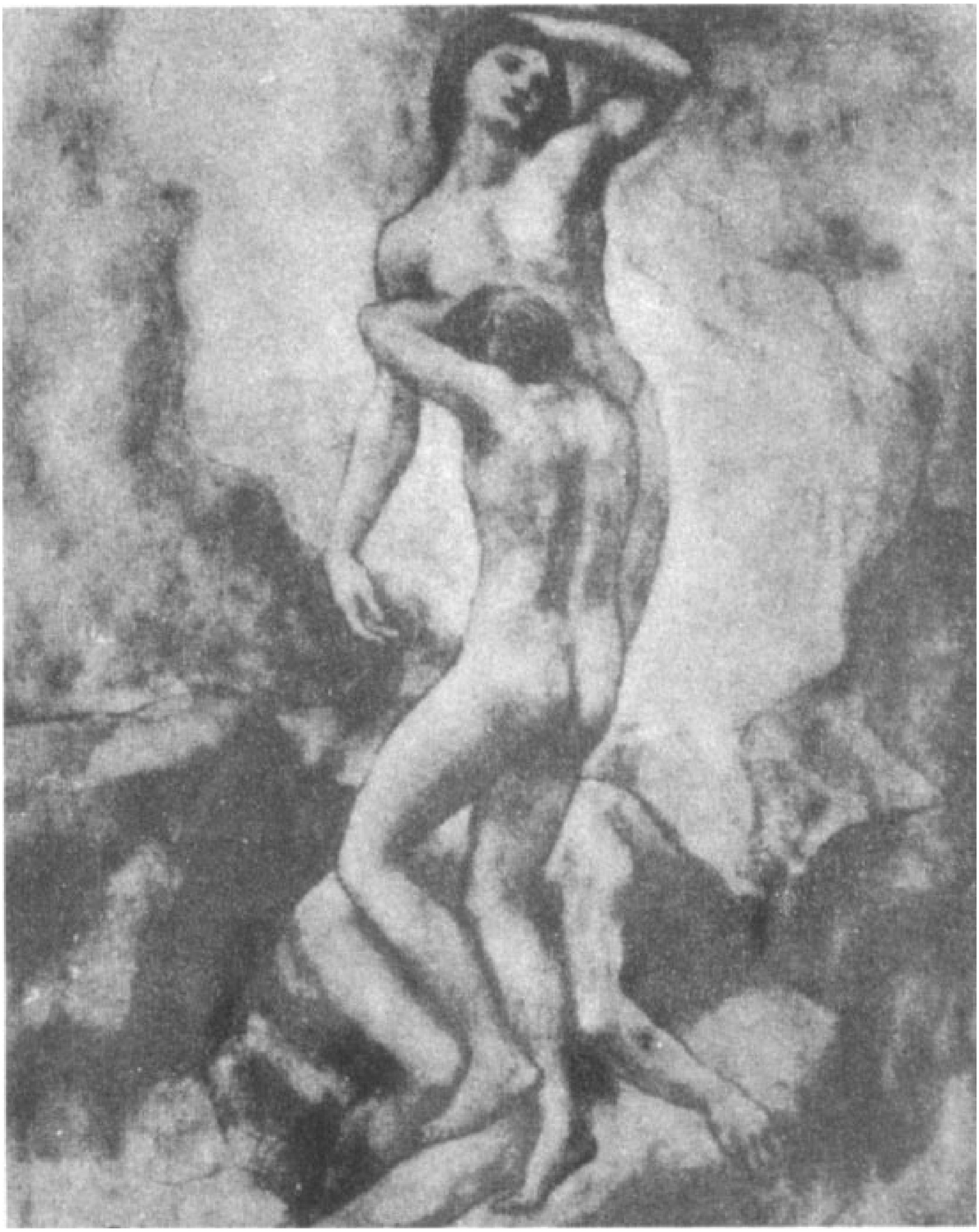
सैन्दर्य अपने ही लावण्य से लज्जावगुण्ठित तरुणी के मध्य आता और जाता है।

आवेशप्रिय विषयी व्यक्ति कहते हैं–नहीं, सौन्दर्य शक्ति–रूपा है।

– झंझावात के समान प्रकट होकर समस्त भूमण्डल में, पृथ्वी–आकाश के ओर–छोर कंपन पैदा कर देता है।

थके–हारे लोग कहते हैं–सौन्दर्य एक स्निग्ध–मन्थर स्वर है, जो अन्तरात्मा में ही प्रकट होता है।

– हमारे मौन में ही उसे व्यक्त होने की प्रेरणा मिलती है, उसका रूप अन्धकार में कांपती हुई उस प्रकाश–रेखा के समान है जो अपनी छाया के डर से तेजस्वी नहीं होती।



अधीर चंचल व्यक्ति कहते हैं–हमने गिरी–श्रृंगों पर उसका तार स्वर सुना है।
– उसकी चीत्कार के साथ घोड़ों के पदचाप, पंखों की फड़फड़ाहट और शेरों की गर्जना भी मिली हुई थी।

रात के पहरेदार कहते हैं–सौन्दर्य का उदय प्रभात में उषा के संग पूर्व दिशा से होता है।
मध्याह्न के मजदूर और दूर के यात्री कहते हैं–सौन्दर्य को हमने संध्या के गवाक्षों

में से पृथ्वी पर झांकते हुए देखा है।

हिमवासी शिशिर–पीड़ित व्यक्ति कहते हैं–सौन्दर्य वसन्त में गिरी–शिखरों पर नृत्य करते हुए अवतरित होगा।

ग्रीष्म की दोपहरी में खेत जोतने वाले किसान कहते हैं–हमने उसे मधुमास के कोमल किसलयों में मुस्कराते देखा है, उसके केशरी केशों पर हिमकण विभूषित थे।

से सभी बातें तुम सौन्दर्य के स्वरूप–वर्णन में कह चुके हो।

तुम सौन्दर्य कै विषय में न कहकर केवल अपना ही स्वरूप–वर्णन करते हो।

वस्तुतः सौन्दर्य कोई सामयिक इच्छा नहीं अपितु आत्मा विलास है।

वह प्यासे होंठों या भिक्षातुर हाथों की ग्राह्य वस्तु मात्र नहीं है |

बल्कि वह है हृदय की ज्योतिशिखा या पूर्णत: मुग्ध आत्मा!

सौन्दर्य कोई पाषाण–प्रतिमा नहीं कि बाह्य चक्षु दर्शन कर सकें, या वह वैसा संगीत नहीं जो बाह्य कर्णो से श्राव्य हो।

सौन्दर्य तो वह प्रतिमा है, जो बन्द आंखें भी देख सकें, और वह संगीत है जो बन्द कान भी सुन सकें।

सौन्दर्य वह रस नहीं जो कड़ी छाल में छिपा रहता है और न ही वह ऐसा पंख है जिसके साथ खूनी पंजा लगा है।

अपितु वह तो सदा फूला–फला उद्यान है अथवा सदा ही उड़ते हुए फरिश्तों का एक दल।

ऐ आर्फलीज-निवासियो! सौन्दर्य वह जीवन है जो अपने सुन्दर पवित्र मुख का घूंघट उठाता है।

परन्तु तुम्हीं तो जीवन हो–और तुम्हीं उसके आवरण।

सौन्दर्य दर्पण में अपने ही रूप को निहारती हुई नित्यता है। परन्तु तुम्हीं तो नित्यता हो और तुम्हीं दर्पण।

भक्ति और कर्म

एक वृद्ध उपदेशक ने धर्म के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रकट की |

उत्तर मिला :

मैंने आज जो कुछ कहा है क्या वह धर्म के अतिरिक्त कुछ और था? क्या धर्म सभी कर्मों और सभी विचारों से भिन्न वस्तु है?

और क्या वह भी जो न कर्म है न विचार, परन्तु जो केवल आश्चर्यमय एक चमत्कार है, और जो उस व्यग्र समय में भी तुम्हारी आत्मा से फूटता रहता है, जब तुम्हारे हाथ प्रतिमा–निर्माण करने अथवा सूत कातने में व्यग्र होते हैं।

कौन है जो अपने कर्मों से अपनी श्रद्धा को अथवा अपने विश्वासों से अपने व्यावसायिक व्यवहार–धर्म को पृथक करेगा?

कौन है जो समय–सीमा को अपने सामने बिखेरकर ऐसा दो टूक विभाजन कर सके कि यह प्रभु के लिए है और यह मेरे लिए; यह मेरी आत्मा के लिए है और यह मेरे शरीर के लिए?

हमारी घड़ियों के पंख लगे हैं जो अंह से अहं तक पहुंचने को शून्याकाश में रम रही हैं।

वह व्यक्ति जो सदाचार को अपना सर्वोच्च–सर्वाधिक उपयोगी आवरण समझ परिधान धारण करते हैं, वे नग्न ही रहते तो अच्छे थे।

पवन और वायु उनकी त्वचा में छिद्र नहीं बना सकते।

जो अपने व्यवहार को शास्त्र की मर्यादा में बांधता है वह हृदय की संगीत–सुषमा को पिंजरे में बन्द करता है।

स्वतन्त्र संगीत लोहे की सींखचों और कंटीले तारों के कटघरे से पैदा नहीं हो सकता।

और वह व्यक्ति जो पूजा को ऐसा वातायन मानता है, जो जब मन चाहा खोल लिया ओर बन्द कर दिया, उसने अपनी आत्मा के मन्दिर के दर्शन नहीं किए, जिसकी प्रतीक्षा में द्वार एक उषा से दूसरी उषा तक खुले रहते हैं।

तुम्हारी प्रतिदिन की जीवनचर्या ही पूजा और धर्म हैं।

जब भी तुम दिनचर्या प्रारम्भ करो पूर्ण समर्पण–भावना से करो।

इस देवमंदिर में जाते हुए अपने सभी साधन, हल, भट्ठी, हथौड़ी और बंसी तथा वे सब उपकरण जो उपयोगिता और मनोरंजन के साधन थे, अपने साथ लेते जाओ।

क्योंकि दिवास्वप्नों में भी तुम अपने लब्ध मनोरथों से ऊंचा नहीं उठ सकते और न अपनी विफलताओं से नीचे गिर सकते हो |

इस उपासना में मानव मात्र को अपना साथी रखो।

क्योंकि आराधना में तुम उनकी आशाओं से ऊपर नहीं जा सकते और विफलता में उनकी कल्पना से अधस्तर पर नहीं जा सकते।

यदि तुम्हें प्रभु–दर्शन की कामना है तो पहेलियां मत बूझो।

सरल मन से अपने समीप ही देखोगे तो तुम उसे अपने बच्चों के संग खेलते पाओगे।

आकाश पर दृष्टि डालो और प्रभु को बादलों के संग उड़ता देखो, विद्युत तरंगों के साथ उसके हाथों का प्रसार होता है और वर्षा के साथ वह भूमि पर उतरता है।

उसे फूलों में हँसते और वृक्षों की शाखाओं के संग हाथ उठाते और हिलाते देखोगे।

मृत्यु

अलमित्रा ने मृत्यु के सम्बन्ध में उत्कट जिज्ञासा व्यक्त की।

उत्तर मिला :

तुम्हें मृत्यु का रहस्य–ज्ञान अवश्य मिलेगा।

किन्तु, जब तक उसकी शोध जीवन के अन्तस्तल में न करोगे तब तक यह सम्भव नहीं।

उल्लू की निशादर्शी आंखें, जो दिन के प्रकाश में दृष्टिहीन हो जाती हैं, दिन के लिए प्रकाश का रहस्य–ज्ञान कैसे प्राप्त करेंगी?

यदि तुम सचमुच मृत्यु का अमूर्त स्वरूप देखना चाहते हो तो पहले समूर्त जीवन के लिए तुम्हें अपने हृदय–कपाट खोलने होंगे।

क्योंकि जैसे नदी और समुद्र एक ही तत्व के दो पार्श्व हैं उसी प्रकार जीवन और मृत्यु भी मूल रूप से एक ही तत्व के दो पार्श्व हैं।

तुम्हारी आशाओं–अभिलाषाओं की तहों के नीचे तुम्हारा परमतत्व ज्ञान भी चुपचाप प्रसुप्त पड़ा है।

और जैसे हिमाच्छादित बीज स्वप्न लेते हैं उसी प्रकार तुम्हारा हृदय भी बसन्त के स्वप्न ले रहा है।

स्वप्नों पर आस्था रखो–क्योंकि उन्हों में शाश्वत का द्वार तिरोहित है।

तुम्हारा मृत्यु–भय उस चरवाहे के भय के समान है जो राज–सम्मान पाने के लिए दरबार में उपस्थित किया गया है और जो हर्ष से प्रफुल्लित होने के स्थान पर राजभय से थरपर कांप रहा है।

क्या चरवाहा अपने कांपते हुए देह के साथ अन्दर से इसलिए प्रसन्न नहीं है क्योंकि उसे राजकीय मान प्राप्त होना है?

फिर भी क्या वह सम्मान पाने के स्थान पर कांपने में अधिक तत्पर नहीं?

आखिर मृत्यु वायु में नीलाम्बर खड़े होने और रवि–किरणों में लीन हो जाने के अतिरिक्त है ही क्या?

श्वास का रुक जाना भी क्या है? श्वास–यन्त्र को अविश्रान्त स्पन्दन से मुक्त करना ही तो है, ताकि वह उपाधिरहित होकर विशाल बने और प्रभु की शोध में अबाध यत्न कर सके।

जब तुम मौन की नदी से पान करोगे, तभी आत्मा का संगीत गा सकोगे|

और जब तुम पर्वत के शिखर पर पहुंच जाओगे तो तुम ऊपर चढ़ना आरम्भ करोगे।

और जब पृथ्वी तुम्हारे शरीर की आहुति ले लेगी तभी तुम स्वतन्त्र नृत्य कर सकोगे।

निर्वाण

अब दिल ढल गया था।

नगर-निवासियों में श्रेष्ठ दानवती अलमित्रा ने अलमुस्तफा से कृतज्ञता भरे स्वर में कहा–धन्य है आज का दिन, और धन्य है अमृतवर्षिणी तुम्हारी वाणी। हम तुम्हारे उपदेश से कृतार्थ हुए।

अलमुस्तफा ने आश्चर्य से पूछा–क्या मैंने उपदेश दिया था! क्या मैं भी श्रोता नहीं था?

कुछ समय बाद वह मन्दिर की सीढ़ियों से उतरा। सब नगरनिवासी उसके पीछे चले। जहाज़ पर पहुंचकर वह उसकी छत पर खड़ा हो गया।

और सबकी ओर मुख करके गम्भीर घोष के साथ फिर कहना शुरू किया :

ऐ आर्फलीज–निवासियो! यह पवन मुझे तुमसे विदा होने का आदेश दे रहा है।

मैं पवन की तरह शीघ्रगामी नहीं, तथापि मुझे जाना तो है ही।

हम पथिक, एकान्त पथ के शोधक हैं। आज के दिन का जैसा अन्त हुआ वहीं से कल के दिन का प्रारम्भ नहीं करते।

उदीयमान सूर्य हमें अस्तगामी सूर्य के प्रदेश से भिन्न देश में पाता है।

पृथ्वी जब विश्राम करती है तब भी हमारी यात्रा का विराम नहीं होता।

वट वृक्ष के बीज के समान हमारा जीवन है। हमारे हृदय की पूर्णता और परिपक्वता के समय ही हम वायु के हाथों पृथ्वी पर बिखेर दिए जाते हैं।

बहुत थोड़े क्षण मैं तुम्हारे मध्य रहा और बहुत थोड़े शब्द कहे।

कदाचित् मेरे शब्द तुम्हारे कर्णकुहर में विलीन हो जाएं और मेरी प्रेम–रेखा तुम्हारे स्मृति–पट पर धुंधली हो जाए तो मैं फिर भी आऊंगा।

और तब अधिक सबल मन और अधिक आत्मवादिनी वाणी से तुम्हें अपनी बात कहूंगा।

निश्चय ही मैं उड़ते सागर–ज्वार के साथ पुनः जाऊंगा।

और तब भले ही मृत्यु मुझे अपने दामन में छिपा ले और अनन्त मौन अपने आंचल से ढांप ले, मैं तुम्हारे विवेक का आश्रय लूंगा।

मेरा स्वर व्यर्थ नहीं जाएगा।

तब मेरी वाणी में यदि कुछ भी सत्य होगा तो वह अधिक स्पष्ट सुनाई देगा और तुम्हारे विचारों के साम्य में स्वत: प्रकट होगा |

ऐ आर्फलीज–निवासियो! मैं वायु–वेग से जा रहा हूं–किन्तु शून्य अतल में नहीं जा रहा।

यदि आज का दिन तुम्हारी अतृप्ति और मेरे प्रेम को पूर्णता नहीं दे सका तो कल यह श्रद्धा रखो।

मनुष्य की अतृप्त इच्छाएं बदल जाती हैं, प्रेम नहीं बदलता, और न ही अपने प्रेम से मन के मनोरथ पूर्ण करने की अभिलाषा ही बदलती है।

इसलिए विश्वास रखो, मैं अनन्त मौनमय प्रदेश से अवश्य लौटुंगा।

वह कोहरा जो सुबह खेतों में ओस–कण छोड़कर विदा हो जाता है, ऊपर उठकर आकाश में मेघों का रूप धारण करेगा और वर्षा के रूप में बरसेगा।

मैं भी उसी कोहरे के समान हूं।

कितनी ही सूनी रातों में मैं तुम्हारे जनपदों में घूमा हूं, मेरी आत्मा तुम्हारे गृहद्वारों का स्पर्श करती रही है।

तुम्हारे हृदय–कम्पन मेरे हृदय को धड़कन दे रहे हैं और तुम्हारे उच्छ्वास मेरी सांसों में मिले हैं। मेरा तुमसे अन्तरंग परिचय हुआ है।

जागृति में मुझे तुम्हारे सुख–दु:ख का पूर्ण ज्ञान रहा है। निद्रा में तुम्हारे स्वप्न मेरे स्वप्न बने हैं।

पर्वतों के बीच जैसे झील रहती है, मैं तुम्हारे मध्य रहा हूं।

मुझमें तुम्हारे जीवन के शिखर और जीवन के अवरोह प्रतिबिम्बित हुए हैं और तुम्हारे शिखर को स्पर्श करके उड़ते विचारों और विकारों की प्रतिच्छाया भी मेरे हृदय में प्रतिबिम्बित हुई है।

मेरे प्रशान्त मन में तुम्हारे बच्चों का हास्य–प्रपात बहा है और युवकों की विलास–नदी प्रवाहित हुई है!

मेरे अन्तर के अतल तल पर पहुंचकर भी उन झरनों और नदी का संगीत स्वर रुका नहीं है।

बल्कि तब उस हास्य–प्रपात से भी मधुर और उस विलास–प्रवाह से भी विराट् शक्ति मेरे अन्तर में जागरित हुई।

वह था तुम्हारा असीम स्वरूप।

वही विराट् शरीर जिसके अन्दर तुम तन्तु और पेशियां बनकर रहते हो।

उसके गीत की तुलना में तुम्हारे सब संगीत हृदय की नि:स्वर धड़कनों के समान हो जाते हैं।

उस विराट् के मध्य में होने से ही तुम विराट् हो।

उसको देखकर ही मुझे तुम्हारे दर्शन हुए और मैंने तुमसे प्रेम किया।

कारण, उस विराट् क्षेत्र में कौन–सी ऐसी दूरी है जहां प्रेम न पहुंच सके?

कौन–सी ऐसी आशा–आकांक्षा और कल्पना है जो उस विराट् उड़ान से बाहर हो?

मधुमंजरी से आच्छादित विशाल वट वृक्ष के समान वह विराट् पुरुष तुम्हारे अन्तर में बंसा है।

उसी की शक्ति तुम्हें पृथ्वी से बांध रही है और उसी का सुवास तुम्हें आकाशविहारी बना रहा है, और उसी की अमरता में तुम मृत्युंजय बनते हो।

तुम्हें कहा जाता है कि लोहे की श्रृंखला की तरह दृढ़ होने पर भी तुम इसकी सबसे कमजोर कड़ी के तुल्य हो।

यह केवल अर्धसत्य है। तुम अपनी दृढ़तम कड़ी के समान दृढ़ भी हो।

तुम्हारे क्षुद्र कार्यों से तुम्हारी शक्ति को तोलना मानो समुद्र–तट की भंगुर फेन से समुद्र की शक्ति का अनुमान करता है।

तुम्हारी क्षणिक असफलता से ही तुम्हारे महत्त्व की परख करना वैसा ही है जैसे ऋतुओं पर परिवर्तनवादी होने का कलंक मढ़ना।

हां, तुम समुद्र के समान असीम हो।

यद्यपि भीमकाय जहाज़ तुम्हारे तट पर ज्वार की प्रतीक्षा करते हैं, तथापि तुम समुद्र की तरह अपने ज्वार को असमय नहीं ला सकते।

तुम ऋतुओं के समान भीं हो।

यद्यपि अपने शिशिरकाल में तुम वसन्त को आने की आज्ञा नहीं देते।

तथापि तुम्हारे अन्तर में प्रसुप्त वसन्त मुसकाता रहता है और तुम्हारी अस्वीकृति से खिन्न नहीं होता।

यह न समझो कि मैं तुम्हें यह इसलिए कह रहा हूं कि तुम परस्पर यह कहो कि 'उसने हमारी सुन्दर शब्दों में स्तुति की।' या 'उसने केवल हमारे श्रेष्ठ कार्यों को देखा।'

सच तो यह है कि अपने अन्त:करण में जो तुम जानते हो वही मैं शब्दों में तुमसे कह रहा हूं।

और शब्दमय ज्ञान, शब्द–रहित ज्ञान की छाया हो तो है।

तुम्हारे विचार और मेरे शब्द उस मुहरबन्द स्मृति की ही तरंगें हैं जिसमें हमारे विगत काल का इतिहास सुरक्षित है।

उस काल का, जब कि पृथ्वी को न हमारा ज्ञान था न ही अपने आपका।

न ही उन रातों का, जब पृथ्वी अपने प्रथम निर्माण की अस्त–व्यस्तता में सोई हुई थी।

ज्ञानी पुरुष तुम्हें ज्ञान देने आए हैं–मैं तुमसे ज्ञान ग्रहण करने आया हूं।

और देखो, मुझे वह वस्तु मिली है, जो ज्ञान से भी महान् है|

यह है वह चैतन्य ज्योति जो सदा अधिकाधिक प्रज्वलित होगी|

परन्तु तुम इसकी वृद्धि से अनभिज्ञ रहकर क्षीण होते दिनों पर शोक मनाते हो।

यही जीवन है, जो शरीर में जीवन की शोध करते हुए मृत्यु से डरता है।

मेरी दुनिया में कब्रों का नाम तक नहीं।

ये पर्वत और समतल आगामी जीवन के पालना और सोपान हैं।

जब कभी तुम उस भूमि के निकट से निकलो, जहां तुमने अपने पुरुखे को दफन किया था, तो उसे ध्यानपूर्वक देखो तो तुम्हें यह अनुभव होगा कि तुम स्वयं वहां अपनी संतानों के हाथों में हाथ डालकर नाच रहे हो।

वास्तव में प्राय: तुम बिना जाने ही प्रसन्न होते हो।

मेरी तरह तुम्हारे पास और भी आए, जिन्होंने तुम्हारे साथ आशापूर्ण वचन किए और उनके पुरस्कार रूप तुमने अपनी सम्पति, अपनी शक्ति और अपनी शोभा उनकी भेंट कर दी।

यद्यपि मैंने तुमसे कोई बड़ा वचन नहीं किया, तो भी तुमने उनकी अपेक्षा मेरे साथ अधिक उदारता का प्रदर्शन किया है।

तुमने मेरे भावी जीवन की पिपासा में वृद्धि कर दी है। निश्चय ही मनुष्य के लिए इससे बड़ा कोई उपहार नहीं, जो उसके उद्देश्यों को तृषित होंठों और सम्पूर्ण जीवन को झरने में परिवर्तित कर देता है।

और इसी में मेरा मान और पुरस्कार वर्तमान है :

कि जब कभी मैं उस झरने में अपनी प्यास बुझाने आता हूं तो उस जीवित जल को तृषित देखता हूं।

और जब मैं उसे पीता हूँ तो वह मुझे पीता है।

तुममें से कई मुझे पुरस्कार ग्रहण करने में गर्वित और लज्जाशील समझते रहे हैं।

मजदूरी प्राप्त करने में सचमुच ही मैं गर्वीला हूं परन्तु पुरस्कार ग्रहण करने में नहीं।

तुम मुझे अपने घरों में अपने साथ बिठाकर भोजन कराने को प्रस्तुत थे परन्तु मैंने पर्वतों पर बेर खा–खाकर उदरपूर्ति की।

और तुम मुझे अपने घरों में आश्रय देने के लिए उद्यत थे परन्तु मैंने मन्दिर के सोपानों पर लेटकर रातें काटीं।

परन्तु क्या यह तुम्हारे द्वारा की गई मेरी दिवा–रात्रि की प्रेमपूर्ण देखभाल का परिणाम नहीं था कि मेरे मुख का आहार मधुर बन गया और मेरी निद्रा सुखद–स्वप्नों से भरपूर हो गई?

इसके लिए मैं तुम्हें सबसे अधिक आशीर्वाद देता हूं।

तुमने मुझे बहुत कुछ दिया, परन्तु तुम नहीं जानते कि तुमने कभी कुछ दिया भी है।

निश्चय ही कृपा, यदि अपने–आपको दर्पण में देखे, तो पत्थर बन जाती है। और एक शुभ कर्म जो अपने–आपको सुकुमार नामों से पुकारे, शाप का कारण बन जाता है।

तुममें से कुछ लोग मुझे एकान्तसेवी और अपने ही अकेलेपन में खोया परदेसी कहते हैं।

और स्वयं तुमने कहा है–यह वृक्षों से बातें करता है, मनुष्यों से नहीं।

– यह गिरि–शिखरों पर अकेला रहता और शहर की बस्ती को अकिंचन मानता है।

यह बात सच है कि मैं पर्वत की चोटियों पर गया हूं और वन–उपवन में दूर–दूर अकेला घूमा हूं।

बहुत दूर गए या बहुत ऊंचा चढ़े बिना मैं तुम्हें भली–भांति देख ही कैसे सकता था?

सच है, दूर गए बिना कोई निकट हो भी कैसे सकता है?

तुममें से कुछ ने मुझे पुकारा, वाणी से नहीं बल्कि हृदय से :

– इन अजेय और अगम्य शिखरों पर चढ़ने वाले परदेसी!

तुम उन पर्वत–श्रृंगों पर क्यों चढ़ते हो जहां चीलें अपना घोंसला बनाती हैं?

– तुम अलभ्य की तलाश क्यों करते हो?

– तुम कौन–से झंझावात को अपने जाल में बांधने की कोशिश कर रहे हो?

– तुम कौन–से तेज उड़ने वाले पक्षियों को आकाश में बांधने के लिए जाल बिछा रहे हो?

– आओ, और हमारे बीच हमारे सदृश बनकर रहो।

– आओ, और हमारे अन्न में से अपना भाग लेकर अपनी क्षुधा मिटाओ और हमारी सुरा से अपनी तृषा शान्त करो |

ये शब्द वे अपनी एकान्तगत आत्मा से कहते थे।

किन्तु यदि उनकी यह एकान्तता और अधिक गूढ़ हो जाती तो उन्हें पता लग जाता है कि मैं उनसे दूर रहकर भी उन्हीं के आनन्द और दु:खों के रहस्य का शोध कर रहा था।

मैं केवल उन्हीं के आकाश विहारी विराट् रूप की एक व्याध की तरह खोज करता था।

किन्तु शिकारी स्वयं भी शिकार था।

कारण, मेरे धनुष से छूटे हुए बहुत–से बाण मेरे ही हृदय में चुभ गए हैं।

और उड़ने वाला पृथ्वी पर रेंगने वाला भी था।

क्योंकि जब मैं आकाश में उड़ने के लिए पंख फैलाता था, तो उसकी छाया सूर्य के प्रकाश में पृथ्वी पर पड़ती थी–जो कछुए के समान पृथ्वी पर धीरे–धीरे रेंगती थी।

और मैं जैसा श्रद्धावान् हूं वैसा ही संशयात्मा भी हूं।

क्योंकि मैंने अपने घाव में प्राय:अपनी उंगली डाली है ताकि मुझे तुम्हारे प्रति अधिक विश्वास हो और तुम्हारे विषय में अधिक ज्ञान की प्राप्ति हो।

उसी विश्वास और ज्ञान के भरोसे मैं तुम्हें कहता हूं कि,

– तुम अपने शरीररूपी पिंजड़े के बन्दी नहीं हो और न ही घरों और खेतों की सीमा में रहने वाले हो।

– तुम्हारा 'स्व' पर्वत-शिखरों पर पवन के झकोरों में स्वतन्त्र विचरने वाला है।

यह कोई ऐसी वस्तु नहीं जो गर्मी पाने के लिए सूर्य-किरणों की उपेक्षा करती है या सुरक्षा के लिए भूमि के अंधेरे छिद्रों की शरण लेती है।

अपितु यह एक ऐसी वस्तु है-एक ऐसी आत्मा है-जो पृथ्वी पर छाई हुई है और आकाश में संचार करती है।

यदि मेरे शब्द सन्दिग्ध है-तो उन्हें स्पष्ट करने का प्रयत्न मत करो।
वस्तुमात्र का आरम्भ संदिग्ध और धुंधले से ही होता है-किन्तु उनका अन्त वैसा नहीं होता।
और मैं चाहता हूं कि तुम्हें आरम्भ के रूप में ही मेरा स्मरण रहे।
जीवन और सर्वचैतन्यमय का जन्म अस्पष्ट कुहरे से ही होता है-स्फटिक से नहीं।
कौन नहीं जानता कि स्फटिक उस कुहरे की क्षयोन्मुख अवस्था का रूप है।

मेरी इच्छा है कि मेरी स्मृति में तुम्हें यह भी स्मरण रहे कि, - तुम्हारे भीतर जो बहुत क्षीण और अस्थिर वस्तु है वही सबल और सुदृढ़ है।
स्मरण रहे, तुम्हारी हडिड्यों में प्राण भरने वाला श्वास भी बहुत क्षीण और अस्पष्ट प्रतीत होता है।
और तुम्हारे भव्य प्रसादों को जन्म देने वाला भी वह धुंधला स्वप्न ही होता है जिसकी तुम्हें याद भी नहीं रहती।
यदि उस प्राण की तरंगों को खोदने की शक्ति तुममें आ जाए तो तुम और सब कुछ भूल जाओ।
और अगर तुम उन स्वप्नों की अस्पष्ट ध्वनि सुन सको तो तुम्हें अन्य शब्दों के श्रवण की इच्छा ही न रहे।
किन्तु तुममें उन्हें न देखने की शक्ति है और न सुनने की। और यह अच्छा ही है।
तुम्हारी आंखों के आवरण उन्हीं हाथों से उठाए जाएंगे जो वास्तव में उन आवरणों का कारण है।
तुम्हारे कर्ण-कुहरों में भरी मृतिका को वही उंगलियां छिन्न कर सकेंगी जिन्होंने उसे गूंधकर तैयार किया था।
तब, तुम्हारी आंखें देख सकेंगी।
तब तुम्हारे कान सुन सकेंगे।
तब, तुम्हें अपनी अन्धता पर खेद न होगा और नही अपनी बधिरता पर शोकार्त होना पड़ेगा।
कारण, उसी दिन तुम्हें सब चराचर चीजों के गूढ़ प्रयोजनों का ज्ञान होगा।
और तभी तुम अन्धकार को भी इतना ही शुभ वरदान समझोगे जितना कि प्रकाश को समझते हो।

इस प्रवचन के बाद उन्होंने अपने चारों ओर दृष्टिपात किया, और देखा कि जहाज के नाविक पतवारों के समीप खड़े हैं। कभी वे वायु से भरे हुए पालों की ओर देखते हैं। और कभी अपनी लम्बी यात्रा की ओर।
और उन्होंने कहा :
मेरी नाव का कर्णधार अतुल धैर्यवान् है।
वायु का वेग बढ़ रहा है और पाल आतुर हो रहे हैं। और तो और पतवारों भी चलने की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रही हैं।
फिर भी; मेरा धीर कर्णधार मेरे मौन की प्रतीक्षा में है। और, सदा महासागर का घोष श्रवण करने वाले नाविक-वृन्द ने भी मुझे बड़े धैर्य से सुना।

किन्तु अब वे और अधिक नहीं रुकेंगे।
मैं तैयार हूं।
निर्झर-धारा सागर तक पहुंच रही है-एक बार फिर जगत-जननी अपने बालक को गोद में ले रही है।
विदा, ऐ आर्फलीज-निवासियो! विदा!
आज का दिन समाप्त हो गया।
कमल की पांखों के समान हम भी पुन: प्रभात-दर्शन तक अपने पंखों को समेटते हैं।
जो कुछ हमें यहां दिया गया, उसकी हम यत्नपूर्वक रक्षा करेंगे।
और यदि यह पर्याप्त नहीं होगा तो हम फिर यहां आकर इकट्ठे होंगे अपने दाता के द्वार पर भिक्षा लेने के लिए हाथ फैलाएंगे।
भूल न जाना, मैं फिर वापस लौटूंगा।
बस, कुछ ही पल का विराम होगा; कि मेरी वासनाएं किसी अन्य शरीर के लिए मिट्टी और झाग बटोरेंगी।
बस, कुछ ही पल का विराम होगा, आकाश में घड़ी भर दम लूंगा कि कोई अन्य जननी मुझे अपने गर्भ में धारण कर लेगी।
तुम्हें और तुम्हारे संग व्यतीत हुए यौवन को मेरा अन्तिम प्रणाम है।
कल ही हमारी भेंट स्वप्न हो जाएगी।
कल ही मेरे एकान्त को तुमने अपने गीतों से भरा था और मैंने तुम्हारे मनोरथों का एक गगनचुम्बी मीनार बना ली थी।
किन्तु अब हमारी नींद समाप्त हो गई है; हमारे सपने टूट गए हैं और प्रभात की वेला भी गुज़र गई है।
मध्याहन् समीप आया है, हमारी अर्ध जागृति के क्षण पूर्ण दिवस में बदल गए हैं, अब हमें विदा लेनी चाहिए।
स्मृति की संध्या में यदि हमारा पुन: मिलन हुआ तो हम फिर मन की बातें करेंगे और तुम मुझे फिर कोई मधुर गीत सुनाओगे।
स्वप्नों में यदि फिर हमारे साथ मिल गए तो फिर से हम आकाश में अपने मनोरथों की मीनार खड़ी करेंगे।

यह कहते हुए उन्होंने मल्लाहों को इशारा किया। मल्लाहों ने लंगर ऊपर खींच लिया, जहाज़ की डोरियों के बांध खोल दिए और जहाज़ ने पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान कर दिया।

उसी समय जनसमूह में से, सब शोकविद्ध हृदयों की चीत्कार के समान एक दर्द भरी पुकार उठी, तो संध्या की धूमिल छाया में मिलकर समुद्र के तुमुल घोष में मिल गई।

केवल अलमित्रा ही मौन हुई जहाज़ को उस समय तक एकटक देखती रही जब तक कि वह क्षितिज के धुंधलके में लीन नहीं हो गया।

जब सब लोग बिखर गए तब भी वह अकेली ही समुद्र-तट पर ध्यानमग्न खड़ी रही, और अलमुस्तफा के इन शब्दों को स्मरण करती रही:

– कुछ ही पल का विराम होगा, आकाश में घड़ी भर दम लूंगा कि कोई अन्य

जननी मुझे अपने गर्भ में धारण करेगी |

ख़लील जिब्रान की यह बैस्ट सैलर पुस्तक एक विश्वस्तरीय गौरव-ग्रंथ है और हर काल में इसे सम्मानपूर्ण कृति का स्थान मिला है। बीसवीं सदी में, बाइबिल के अतिरिक्त किसी और किताब की इतनी प्रतियां नहीं बिकी हैं जितनी इसकी बिकी हैं। ख़लील जिब्रान (1883-1931) लेबनान में जन्मे, किन्तु उन्होंने अपने जीवन का बड़ा हिस्सा अमेरिका में बिताया और अपने जीवन में उन्होंने पच्चीस पुस्तकें लिखीं। उन्होंने उपन्यासकार, निबंधकार, कवि, चित्रकार तथा मूर्तिकार के रूप में प्रतिष्ठा अर्जित की। यह पुस्तक ख़लील जिब्रान की सर्वश्रेष्ठ कृति मानी जाती है और संसार की सभी प्रमुख भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है।

एक मसीहा थे जो विदेश में बारह वर्ष बिताकर अपने घर लौट रहे थे जब उन्हें रास्ते में कुछ लोगों ने रोका और उनसे जीवन के विविध पक्षों के बारे में जानना चाहा। मसीहा ने छब्बीस ज्ञान और विवेकपूर्ण उपदेशों के माध्यम से उन्हें गहरा जीवन- दर्शन समझाया। ख़लील जिब्रान की यह पुस्तक इसी जीवन-दर्शन को सामने लाती है। इस पुस्तक में उनका चित्रांकन भी लिया गया है जो इसे और भी अधिक प्रभावशाली बनाता है।

राजपाल